इनसाफ़

बिन्तुल इस्लाम

अनुवादक

एस. ख़ालिद निज़ामी

विषय-सूची

1. दो शब्द 4

2. इनसाफ़ 5

3. इनसाफ़ के मानी, आदेश और अहमियत 5
- घरेलू ज़िन्दगी में न्याय और इनसाफ़ 9
- घरवालों के बीच न्याय और इनसाफ़ 10
- बीवी और दूसरे रिश्तेदारों के बीच न्याय और इनसाफ़ 12
- बीवी से नाइनसाफ़ी करने की कुछ और शक्लें 21
- घर की मालिकिन की ज़िम्मेदारी 23
- औलाद के बीच इनसाफ़ 28

4. सामाजिक जीवन में इनसाफ़ 33
- शासक वर्ग का इनसाफ़ 35
- अदालतों में इनसाफ़ 40

5. इनसाफ़ की माँगें 46
- कमज़ोर को बिना परेशान हुए उसका हक़ मिलना 46
- न्याय निःशुल्क हो 48
- मुजरिम को ही सज़ा 49
- अपने या दूसरों के व्यक्तिगत फ़ायदे से ऊपर उठकर इनसाफ़ करना 51
- इनसाफ़ में देर न लगाना 54

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

(अल्लाह रहमान-रहीम के नाम से।)

दो शब्द

इनसाफ़ के असल मानी हैं 'बराबर होना'। यानी किसी चीज़ को दो बराबर हिस्सों में इस तरह बाँट दिया जाए कि किसी को भी कमी या बेशी की शिकायत बाक़ी न रहे।

इनसाफ़ इस्लामी तालीमात का एक अहम हिस्सा है। समाज में अम्न और शान्ति बहाल रखने के लिए, हक़दार को उसका हक़ पहुँचाने और आम और ख़ास को बिना किसी फ़र्क़ और भेद-भाव के मुत्मइन करने के लिए इनसाफ़ का क़ियाम बहुत ज़रूरी है। जिस देश या समाज में इनसाफ़ क़ायम न हो उस देश या समाज में अम्न व शान्ति और सुकून व इत्मीनान कभी क़ायम नहीं रह सकता।

चूँकि इस्लाम सारी दुनिया का दीन है और पूरी दुनिया में अम्न, शान्ति, सुकून और इत्मीनान इसी दीन से बहाल होना है, इसलिए इसने अपनी तालीमात (शिक्षाओं) में इनसाफ़ को बड़ी अहमियत दी है।

इस किताब 'इनसाफ़ : अहमियत और फ़ायदे' में मोहतरमा बिन्तुल इस्लाम (मरहूमा) ने बड़ी अच्छी तरह इनसाफ़ के मानी और उसकी अहमियत व ज़रूरत पर रौशनी डाली है और घरेलू और इजतिमाई (सामाजिक) ज़िन्दगी में न्याय और इनसाफ़ किस तरह किया जाए बड़े अच्छे ढंग से समझाया है। इस किताब में न्याय और इनसाफ़ के मुताल्लिक़ बहुत-सी हदीसें और क़ुरआन मजीद की आयतें एक जगह जमा कर दी गई हैं जिससे पढ़नेवालों को बहुत फ़ायदा पहुँचेगा।

अल्लाह तआला से हमारी दुआ है कि हम सबको हमेशा न्याय और इनसाफ़ पर क़ायम रखे।

— प्रकाशक

इनसाफ़

इनसाफ़ के मानी, आदेश और अहमियत

क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला फ़रमाता है –

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह ही के लिए सच्चाई पर क़ायम रहनेवाले और न्याय की गवाही देनेवाले बनो। किसी गिरोह की दुश्मनी तुम्हें इतना उत्तेजित न कर दे कि न्याय से फिर जाओ, न्याय करो, यह ख़ुदा-तरसी (ईशपरायणता) से ज़्यादा क़रीब है, अल्लाह से डरकर काम करते रहो, जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उससे पूरी तरह बाख़बर है।" (क़ुरआन, 5:8)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

"हर दिन, जिसमें सूरज निकलता है, उसमें इनसानों के हर जोड़ पर सदक़ा (दान और ख़ैरात) करना वाजिब (अनिवार्य) हो जाता है – और अगर कोई व्यक्ति–लोगों के बीच इनसाफ़ करे तो यह भी एक सदक़ा है।" (हदीस : बुख़ारी)

अल्लाह की राह में ख़ैरात (दान) करना बहुत बड़ाई और नेकी की बात है, और हर दिन इनसान के हर जोड़ पर ख़ैरात करना अनिवार्य हो जाता है। मगर ज़रूरी नहीं कि यह ख़ैरात जो हर दिन अनिवार्य होती है माल की शक्ल ही में अदा की जाए, बल्कि यह भले कामों की शक्ल में भी अदा की जा सकती है।

कोई ऐसा काम करना जिससे ख़ुदा के बन्दों को फ़ायदा पहुँचे सदक़ा और ख़ैरात है। इस सदक़े की एक अच्छी शक्ल यह है कि ख़ुदा के बन्दों

और उसकी सृष्टि के मामले में न्याय और इनसाफ़ से काम लिया जाए। समाज में अम्न व शान्ति स्थापित करने और लोगों के इत्मीनान के लिए न्याय और इनसाफ़ से काम लेना बेहद ज़रूरी है। जिस समाज में शासक वर्ग आम जनता के साथ न्याय करेगा और जनता भी एक-दूसरे के साथ न्याय व इनसाफ़ की नीति अपनाएगी, उस समाज के लोग मुत्मइन रहेंगे कि हमें हमारे हक़ और अधिकार मिल रहे हैं। इस रूप में वह समाज मज़बूत होगा, लोग अपने-अपने कामों में व्यस्त रहेंगे और शोर-हंगामा फ़ितना व फ़साद और बग़ावत की ओर मुतवज्जेह नहीं होंगे, मगर जिस समाज में लोगों को उनके हक़ नहीं मिलेंगे, उनके साथ बेइनसाफ़ी और अन्याय होगा और उनमें महफ़ूज़ (सुरक्षित) होने का एहसास नहीं रहेगा, वहाँ देर-सवेर फ़ितना व फ़साद पैदा होकर रहेगा और लोग अपनी हर रोज़ की ज़िम्मेदारियों को भी पूरी दिलचस्पी के साथ पूरा नहीं कर सकेंगे।

क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"(ऐ नबी! लोगों से) कह दीजिए कि मेरे रब ने तो इनसाफ़ करने का हुक्म दिया है।" (क़ुरआन, 7:90)

"बेशक अल्लाह इनसाफ़ और उपकार करने का हुक्म देता है।" (क़ुरआन, 16:90)

"और इनसाफ़ करो, बेशक अल्लाह इनसाफ़ करनेवालों से प्रेम रखता है।" (क़ुरआन, 49:9)

नबी (सल्ल॰) को सम्बोधित करके फ़रमाया गया कि उन लोगों से कह दीजिए—

"मुझे हुक्म दिया गया है कि मैं तुम्हारे बीच इनसाफ़ करूँ।" (क़ुरआन, 42:15)

इसी तरह क़ुरआन की एक दूसरी सूरा में फ़रमाया गया है—

"हमने अपने पैग़म्बरों को खुले-खुले आदेश देकर भेजा और

उनके साथ किताब और तुला उतारी ताकि लोग इनसाफ़ पर क़ायम हों........।" (क़ुरआन, 57:25)

क़ुरआन मजीद की इन आयतों के अलावा नबी (सल्ल॰) की हदीसों में भी न्याय और इनसाफ़ की बड़ाई और ज़ुल्म व अन्याय की निन्दा स्पष्ट शब्दों में की गई है।

हज़रत अबू सईद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि–

"क़ियामत (महाप्रलय) के दिन अल्लाह तआला को लोगों में सबसे ज़्यादा प्रिय और सबसे ज़्यादा उसके क़रीब बैठनेवाला वह शासक होगा जो न्याय करता रहा होगा और लोगों में से जिससे अल्लाह तआला सबसे ज़्यादा नफ़रत करेगा और जो लोगों में से अल्लाह से सबसे दूर बैठा होगा, वह शासक होगा जो ज़ुल्म व अन्याय करता रहा होगा।" (हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

"ये भी अल्लाह की बड़ाई बयान करने की ही शक्लें हैं कि बूढ़े ईमानवाले का सम्मान किया जाए और क़ुरआन के उस हाफ़िज़ का सम्मान किया जाए जो न उसमें (क़ुरआन में) बढ़ोत्तरी करता हो न कमी, और उस शासक का सम्मान किया जाए जो न्याय करनेवाला हो।" (हदीस : अबू दाऊद)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"क़ियामत के दिन तुमसे हक़दारों के हक़ दिलवाए जाएँगे यहाँ तक कि अगर किसी सींगवाली बकरी ने बेसींगवाली बकरी पर ज़ुल्म किया होगा तो उससे बेसींगवाली बकरी का बदला ले लिया जाएगा।" (हदीस : मुस्लिम)

ज़ाहिर है कि जानवर अपने कर्मों के प्रति जवाबदेह नहीं हैं। नबी (सल्ल॰) के इस कथन का मतलब यह है कि अगर किसी आदमी को थोड़ा-सा भी अधिकार प्राप्त होगा और उस अधिकार से काम लेकर उसने किसी के साथ बेइनसाफ़ी करके उसपर ज़ुल्म किया होगा तो क़ियामत के दिन मज़लूम (उत्पीड़ित) को उससे बदला दिलवाया जाएगा। अब ऐसा इनसान तो शायद ही कोई हो जिसे अपनी पूरी ज़िन्दगी में कभी किसी पर थोड़ा-सा भी अधिकार प्राप्त न हुआ हो। इसी लिए हर इनसान को ख़तरा यह है कि कहीं वह अपने किसी अधिकार से काम लेकर दूसरे पर कोई ज़ुल्म व अत्याचार कर बैठे और फिर अल्लाह के यहाँ उसकी पकड़ हो। दोनों पक्षों वादी-प्रतिवादी में से कोई पक्ष भी यदि ज़ालिम साबित होता है और न्याय व इसनसाफ़ का दामन छोड़कर किसी के हक़ को हड़प लेता है तो वह क़ियामत के दिन अपने इस ज़ुल्म व अत्याचार के लिए पकड़ा जाएगा।

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) बयान करते है –

> "अल्लाह के नबी (सल्ल॰) कोई चीज़ बाँट रहे थे कि एक आदमी आप (सल्ल॰) पर झुक गया। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने एक टहनी उस आदमी के बदन में चुभाते हुए उसे हटाया। वह आदमी हटा, तो अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने यह सोचते हुए कि मैंने उसे तकलीफ़ पहुँचाई है, फ़रमाया कि आ, बदला लेले। मगर उसने कहा कि नहीं, ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने माफ़ किया।" (हदीस : नसई)

इससे सपष्ट हो जाता है कि जहाँ तक न्याय व इनसाफ़ का संबंध है अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने अपने पवित्र व्यक्तित्व को भी इससे अलग नहीं रखा। जब आप (सल्ल॰) के हाथ से किसी को तकलीफ़ पहुँच गई तो आप (सल्ल॰) ने अपने आपको भी बदले के लिए पेश कर दिया।

घरेलू ज़िन्दगी में न्याय और इनसाफ़

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन अल-आस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"न्याय और इनसाफ़ करनेवाले लोग अल्लाह तआला के पास यानी ख़ुदा-ए-रहमान के दाहिनी तरफ़ नूर के मिम्बरों पर होंगे – यानी वे लोग जो फ़ैसले करते हैं तो इनसाफ़ से करते हैं और अपने घरवालों के साथ भी न्याय की नीति अपनाते हैं और जो कुछ भी उनके अधिकार में होता है उसके बाबत न्याय और इनसाफ़ का मामला करते हैं।" (हदीस : नसई)

जैसा कि बयान किया जा चुका है जहाँ भी किसी इनसान को थोड़ा-बहुत इख़्तियार (अधिकार) हासिल होगा, वह इस आज़माइश में पड़ जाएगा कि क्या वह उन लोगों के साथ जिनपर उसे इख़्तियार हासिल है इनसाफ़ कर रहा है या नहीं। हुकूमत चलानेवालों और अधिकारियों के बारे में देखा जाएगा कि वे जनता के साथ इनसाफ़ कर रहे हैं या नहीं। न्याय करनेवाले न्यायाधीश (क़ाज़ी) और जज आदि के बारे में देखा जाएगा कि लोग जो मुक़द्दमे उनके पास लाते हैं उनके फ़ैसले करते हुए उन्होंने इनसाफ़ से काम लिया है या नहीं। इसी प्रकार घर के मुखिया की यह ज़िम्मेदारी है कि घरवालों के साथ इनसाफ़ करे। मालिक की ज़िम्मेदारी है कि नौकर और ख़ादिम के मामले में इनसाफ़ से काम ले। मज़दूर से काम करानेवाले की ज़िम्मेदारी है कि उसकी मेहनत का बदला पूरे इनसाफ़ से अदा करे। फिर जो व्यक्ति इस आज़माइश में पूरा उतरेगा और जो कोई भी और जो कुछ भी उसके मातहत होगा, उसके बारे में इनसाफ़ से काम लेता रहा होगा– उसे ख़ुशख़बरी सुनाई गई है कि वह अल्लाह तआला के पास दाहिनी तरफ़ नूर के मिम्बर (यानी उच्च स्थान) पर बैठा होगा।

घरवालों के बीच न्याय और इनसाफ़

इनसान का सबसे निकट का वातावरण उसका घर है और घर में प्रायः कई तरह के लोग मिल-जुलकर जीवन व्यतीत कर रहे होते हैं। घर के मुखिया और उसके बीवी-बच्चों के अलावा कभी यह भी होता है कि घर के मुखिया के माँ-बाप भी उसी घर में रह रहे हों और कभी उसके माँ-बाप के अलावा उसके बहन-भाई भी उसी घर में रह रहे होते हैं। यही नहीं बल्कि कभी-कभी दूसरे रिश्तेदार भी, जैसे दादा-दादी, ख़ाला-फूफी, चचा-ताया, या दूर और नज़दीक का कोई और रिश्तेदार भी उसी घर में रह रहा होता है। अब यह भी ज़रूरी नहीं कि इन सारे लोगों में परस्पर प्यार और एक-दूसरे पर भरोसा ही हो, बल्कि अकसर यही देखा जाता है कि एक जगह रहनेवालों को आपस में शिकायतें पैदा होती ही रहती हैं। ख़ास तौर से सास-बहू, ननद-भावज और देवरानी-जेठानी की आपसी नफ़रत तो हमारे समाज में एक कहावत और लोकोक्ति बन चुकी है। ऐसी स्थिति में घर के ज़िम्मेदार और मुखिया के कंधों पर यह भारी ज़िम्मेदारी आ पड़ती है कि वह ऐसे तरीक़े से चले कि उन सब लोगों को इनसाफ़ के साथ उनके हक़ और अधिकार मिलते रहें और उनके आपस में टकरा जाने के मौक़े कम से कम पैदा हों। मुमकिन है कि इसके बावजूद भी वे एक-दूसरे से नफ़रत करें, लेकिन यह भी सच है कि अगर सबके साथ न्याय और इनसाफ़ का बर्ताव होगा तो उनकी आपसी नफ़रत की एक बहुत बड़ी वजह ज़रूर ख़त्म हो जाएगी।

लेकिन दिक़्क़त यह है कि बहुत कम लोगों में वह एहसास, वह इल्म (ज्ञान) और वह समझ-बूझ होती है जिससे काम लेकर वे उन सब लोगों के हक़ अदा करने में सन्तुलन रख सकें। आम तौर पर जो कुछ भी देखने में आता है वह यही कि अगर कोई शख़्स माँ-बाप और भाई-बहन की तरफ़ ज़्यादा झुकेगा तो बीवी के साथ बेइनसाफ़ी करना शुरू कर देगा और अगर बीवी की तरफ़ ज़्यादा झुकेगा तो माँ-बाप और भाई-बहन के मामले में मुँह मोड़ने लगेगा। हालाँकि अच्छा बेटा और अच्छा भाई बनने के लिए यह

बिल्कुल ज़रूरी नहीं है कि इनसान साथ ही एक बुरा शौहर भी बने और इसी तरह यह भी ज़रूरी नहीं कि अच्छा शौहर बनने के लिए माँ-बाप का नाफ़रमान बेटा और बहन-भाई का बेपरवाह भाई बन जाए। माँ-बाप से बड़ा एहसान करनेवाला दुनिया में और कोई नहीं होता और बहन-भाई भी ज़िन्दगी में स्नेह और प्यार देते हैं, वह भी कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसकी यादों को आसानी से दिल व दिमाग़ से मिटाया जा सकता हो, लेकिन इसके साथ यह भी याद रखना चाहिए कि जो औरत अपने माँ-बाप, भाई-बहन, कुल-परिवार और कभी-कभी अपना देश और वतन तक छोड़कर शौहर के घर आई है, वह भी अपने कुछ ख़ास अधिकार लेकर आई है और उसके हक़ और अधिकारों को छीनकर कोई भी शौहर 'शरीफ़' और अपनी ज़िम्मेदारियों को पहचाननेवाला इनसान नहीं बन सकता।

एक मुसलमान को इस हक़ीक़त (वास्तविकता) पर ईमान रखना चाहिए कि अल्लाह तआला ने इनसानों को वही आदेश दिए हैं जिनका पालन करना उनके बस में था। अतः यदि घर के विभिन्न और प्रायः एक-दूसरे से घृणा करनेवाले लोगों के हक़ों को इनसाफ़ के साथ अदा करना इनसान के बस में न होता तो अल्लाह तआला उसपर कभी भी यह ज़िम्मेदारी नहीं डालता। अब अगर उसका आदेश यही है कि घर का ज़िम्मेदार घरवालों के बीच संतुलन बनाए रखे तो इसका अर्थ यही है कि इनसाफ़ क़ायम करना इनसान की सामर्थ्य और ताक़त के अन्दर है, ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि —

(1) अल्लाह तआला ने उन तमाम लोगों के जो हक़ (अधिकार) निश्चित कर रखे हैं, घर के ज़िम्मेदार को उन सबकी जानकारी हो, और

(2) उसके दिल में घरवालों के हक़ों (अधिकारों) के बारे में आख़िरत की जवाबदेही का इतना गहरा एहसास मौजूद हो कि वह अपनी नजात (मुक्ति) के लिए उनके हक़ों को अदा करना ज़रूरी समझे।

यह इल्म और यह एहसास इनसान को इस क़ाबिल बनाता है कि वह सही नीति अपना सके। यहाँ इस बात को भी दिल और दिमाग़ में बिठा

लेना चाहिए कि सही नीति अपनाने के लिए यह इल्म और यह एहसास दोनों आवश्यक होते हैं। क्योंकि अगर इनसान को यह एहसास तो हो कि घरवालों में से हर एक के साथ इनसाफ़ करना ज़रूरी है किन्तु वह यह न जानता हो कि घरवालों में से प्रत्येक के क्या-क्या हक़ हैं तो वह अनभिज्ञता के कारण किसी एक के साथ नाइनसाफ़ी कर जाएगा। यद्यपि वह यही समझता रहेगा कि मैं तो बड़ा न्यायशील हूँ। इसी प्रकार उसे यह तो मालूम हो कि प्रत्येक के हक़ और अधिकार क्या-क्या हैं मगर वह इस एहसास से ख़ाली हो कि कल अल्लाह के समक्ष मुझे उन अधिकारों के बारे में जवाब भी देना है तो भी उसे नाइनसाफ़ी से रोकने के लिए कोई रुकावट मौजूद न होगी। नाइनसाफ़ी से तो सिर्फ़ वही बच सकेगा जिसे यह मालूम हो कि जिन लोगों का उसे सरपरस्त बनाया गया है, उनमें से हर एक के ये और ये अधिकार हैं और दूसरी तरफ़ उसे यह तमन्ना भी हो कि मौत के बाद मिलनेवाले हमेशा के जीवन में उसे उन लोगों के अधिकारों के बारे में सफलता मिल जाए।

बीवी और दूसरे रिश्तेदारों के बीच न्याय और इनसाफ़

कई लोग ऐसे देखे जाते हैं जो अपने घरवालों की आपसी रंजिश की वजह से इतने परेशान रहते हैं कि मानो उनकी ज़िन्दगी अजीरन हो चुकी होती है। एक तरफ़ माँ-बाप और बहन-भाई शिकायत करते होते हैं कि हमारे साथ अन्याय हो रहा है तो दूसरी तरफ़ बीवी हर वक़्त गुहार करती होती है कि मुझ जैसा मज़लूम तो दुनिया में कोई है ही नहीं, और बीच में वह शख़्स फँसा होता है जो इन सबका भरण-पोषण,रक्षा करने और उनके मामलों को सही रखने का उत्तरदायी होता है। जो लोग ज़्यादा कमज़ोर तबीअत के होते हैं वे जब ऐसी स्थिति में घिर जाते हैं तो उनमें से कुछ तो मौत की तमन्ना करने लगते हैं, कुछ उन टकराते रहनेवालों को छोड़-छाड़कर भाग जाने की धमकी देने लगते हैं और कुछ एक आसान तरीक़ा अपना लेते हैं, वह यह कि उन परस्पर झगड़ते रहनेवाले पक्षों में से किसी एक का साथ देकर दूसरे से बिल्कुल बेपरवाह हो जाते हैं।

अब यह भी एक वास्तविकता है कि इनसान अपने क़रीबी माहौल से ज़्यादा प्रभावित होता है। इसलिए जब ये कमज़ोर तबीअत के लोग किसी एक पक्ष का साथ देकर दूसरे से बेपरवाह हो जाते हैं तो फिर उसी पक्ष का असर क़बूल करते चले जाते हैं जिसके वे क़रीब होते हैं और दूसरे पक्ष के बारे में धीरे-धीरे यही यक़ीन मज़बूत होता है कि सारा ज़ुल्म व ज़्यादती वही दूसरा पक्ष कर रहा था, क्योंकि ताल्लुक़ कम हो जाने की वजह से उसके लिए दूसरे पक्ष का दृष्टिकोण मालूम करने और सही हालात को जानने के अवसर कम हो जाते हैं। इसलिए यह आम तौर पर देखने में आता है कि किसी घराने में घर का ज़िम्मेदार बीवी ही का दास होकर रह जाता है और माँ-बाप और बहन-भाइयों से जुर्म की हद तक लापरवाही करने लगता है और कहीं माँ-बाप और बहन-भाइयों का इतना असर क़बूल कर लिया जाता है कि बीवी से न केवल बेपरवाई का व्यवहार किया जा रहा होता है, बल्कि उसपर ज़ुल्म और अत्याचार भी किए जा रहे होते हैं।

क़ुरआन और हदीस की रौशनी में ग़ौर करें तो पता चलता है कि ये तीनों तरीक़े ग़लत हैं। न तो इनसान के लिए यही जाइज़ है कि मसलों को हल करने की कोशिश करने के बजाए उनसे भागने की कोशिश करे और न यही तरीक़ा सही है कि अक़्ल और समझ से काम लेकर दोनों पक्षों के बीच सुलह कराने और इनसाफ़ के बजाय बेवक़ूफ़ों की तरह किसी एक ही की आँखों से देखना और उसी के कानों से सुनना और उसी के दिल से सोचना शुरू कर दे।

इनसाफ़ और न्याय करने वाला इनसान बनने के लिए यह ज़रूरी है कि उस कठिन समस्या से घबराने के बजाय अक़्ल और समझ से काम लेकर उसपर ग़ौर किया जाए और अल्लाह-तआला से उसे हल कर सकने की सामर्थ्य माँगी जाए। आख़िर अल्लाह तआला ने इनसान को अपनी पैदा की हुई चीज़ों में सबसे ऊँचा दर्जा और उसे अक़्ल और समझ जैसी नेमत दी है तो फिर इस नेमत का शुक्र अदा करने की एक शक्ल यह भी तो है कि उस नेमत से फ़ायदा उठाया जाए। क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला ने इनसानों से बार-बार कहा है —

"क्या तुम अक़्ल से काम नहीं लेते।"

इसी तरह इनसानों पर अपनी बेशुमार नेमतों का ज़िक्र करते हुए बार-बार फ़रमाया –

"तुम अक़्ल से काम लो।"

इसलिए अक़्लमन्दी का तक़ाज़ा यही है कि अल्लाह तआला ने इस्लाम धर्म की शक्ल में जो जीवन-व्यवस्था हमें प्रदान की है उसके फ़ायदे और मक़सद पर ग़ौर किया जाता रहे।

स्पष्ट रहे कि धर्म में ऐसे हुक्म नहीं दिए जाते जो बे-मक़सद हों। इनसानी ज़िन्दगी को बेहतर और कामयाब तरीक़े से गुज़ारने के लिए अगर केवल बीवी-बच्चे काफ़ी होते तो अल्लाह तआला माँ-बाप, रिश्तेदारों, पड़ोसियों, बहन-भाइयों और आम इनसानों के हक़ और अधिकारों पर ज़ोर न देता। इसी तरह अगर घर और बीवी-बच्चों के बिना एक सही इस्लामी ज़िन्दगी गुज़ारी जा सकती तो निकाह, बीवी का भरण-पोषण, प्यार से साथ रहना, और बच्चों की परवरिश और अच्छी तरबीयत को नेकियाँ (भलाइयाँ) न ठहराया जाता।

जो लोग यह समझते हैं कि सिर्फ़ अपने बीवी-बच्चे काफ़ी हैं, इससे आगे संबंध क़ायम रखने के मामले में कोशिश करने की ज़रूरत नहीं, वे मानो इनसान को पशु-पक्षियों के दर्जे पर ला गिराते हैं। पक्षियों, चौपायों और हिंसक पशुओं के लिए तो यह मुमकिन है कि सिर्फ़ अपने घोंसले या अपने भट को सब कुछ समझ लें लेकिन मनुष्य का उच्च और जटिल समाज इसकी इजाज़त नहीं देता। जिन बीवी-बच्चों को काफ़ी समझ लिया जाता है, उन्हीं की ज़िन्दगी की विभिन्न अवस्थाओं में हज़ारों ऐसे मसले पैदा होते रहते हैं जिन्हें हल करने के लिए उन्हीं सगे-सम्बन्धियों की ज़रूरत होती है जिनसे लापरवाही बरती गई होती है। सोचा जाए तो अल्लाह तआला ने बीवी-बच्चों, रिश्तेदारों-पड़ोसियों, बहन-भाइयों और इनसानी समाज के हक़ और अधिकार क़ायम करके इनसान को यह भी सुझाया है कि उसका जीवन दूसरे प्राणी-जगत से बहुत ज़्यादा ऊँचे दर्जे का है।

यहाँ एक और बात को सामने रखना चाहिए कि एक तरफ़ बीवी-बच्चे और दूसरी तरफ़ ख़ून के रिश्ते, दोनों घर के ज़िम्मेदार की शक्तियाँ हैं और उसकी अक़्लमन्दी की अपेक्षा यही है कि वह अपनी शक्ति के इन दोनों स्रोतों को चिरस्थाई रखने की कोशिश करे। जो लोग केवल बीवी-बच्चों के हो कर रह जाते हैं और अन्य संबंधित लोगों से रिश्ता तोड़ लेते हैं, उनकी शक्ति का एक स्रोत ख़त्म हो जाता है। फिर जैसे-जैसे उम्र ज़्यादा होती जाती है वे बच्चों के भरण-पोषण करनेवाले बनने के बजाय इस बात के मुहताज हो जाते हैं कि बच्चे उनके भरण-पोषण करने वाले बनें। इस स्थिति में अगर बच्चे अपनी ज़िम्मेदारी को समझनेवाले हुए तो ठीक, नहीं तो उन बूढ़े लोगों की ज़िन्दगी इतनी सूनी और फ़ीकी और कभी-कभी तरह-तरह के मसलों से भर जाती है कि बुढ़ापा शिकवे-शिकायतें करते और ग़म खाते गुज़र जाता है। हालाँकि अगर उन्होंने ज़िन्दगी में अपनी शक्ति के दूसरे स्रोतों को क़ायम रखने की कोशिश की होती तो आज उन्हें कई तरफ़ से हमदर्दी और साथ हासिल होता, बल्कि असंभव नहीं कि शक्ति के उस स्रोत की मौजूदगी में लापरवाह और उद्दण्ड बच्चे भी किसी हद तक उनके आगे झुकने पर मजबूर हो जाते ।

ऐसे ही जो लोग दूसरे सगे-सम्बन्धियों के बहकावे में आकर बीवी-बच्चों के साथ अन्याय करते रहते हैं उनका भविष्य भी ख़तरे में घिर जाता है। क्योंकि जब उनपर बुढ़ापे और कमज़ोरी का प्रभाव होता है तो वे देखते हैं कि घर में उनके ख़िलाफ एक संयुक्त मोर्चा क़ायम हो चुका होता है। इस संयुक्त मोर्चे की शक्ल यह है कि हम देखते हैं कि सामान्य रूप से बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते जाते हैं वे अपना वज़न माँ के पलड़े में डालते जाते हैं और इस प्रकार माँ की ताक़त दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती है और बाप की कम होती जाती है। अब अगर बाप बच्चों की माँ के साथ नाइनसाफ़ी और ज़ुल्म करता रहा होगा तो माँ और बच्चों के दिल में उसका मलाल ज़रूर होगा। फिर जब वह नाइनसाफ़ी करते रहनेवाला व्यक्ति कमज़ोरी का शिकार होगा (अर्थात बूढ़ा हो चुका होगा), बहुत मुमकिन है कि उस वक़्त

तक उसके माँ-बाप की मौत हो चुकी होगी, बहन-भाई अपने-अपने मसलों में उलझ चुके होंगे। वे दूर बैठकर हमदर्दी का इज़हार तो कर लेंगे, मगर पास आकर सँभालने से मजबूर होंगे और जिन बीवी-बच्चों को उसे उस बुढ़ापे की हालत में सँभालना था उनका दिल दूर हो चुका होगा, और अगर वे सँभालेंगे भी तो दिल की ख़ुशी से नहीं सँभालेंगे। इसलिए इसकी ज़्यादा उम्मीद है कि सम्बन्धियों के बहकावे में आकर नाइनसाफ़ी करनेवाला इनसान उस वक़्त अकेला रह जाएगा जब उसे दूसरों का साथ और सेवा की अत्यंत ज़रूरत होगी।

यह शक्ल इस हक़ीक़त को स्पष्ट करने के लिए बयान की गई है कि एक तरफ़ बीवी-बच्चों और दूसरी तरफ़ घर के दूसरे लोगों के साथ इनसाफ़ करना घर के ज़िम्मेदार के लिए बहुत ही ज़रूरी है और उसका फ़र्ज़ है कि वह उसे उतना ही ज़रूरी समझे जितना ज़रूरी यह हक़ीक़त में है, क्योंकि जब इनसान किसी चीज़ को ज़रूरी और लाभदायक समझ लेता है तो फिर वह उसके लिए हर मुमकिन कोशिश और संघर्ष करता है, और जब वह पूरी कोशिश करता है तो उसके लिए कई ऐसे द्वार खुल जाते हैं जो उस सूरत में नहीं खुलते जब इनसान पूरे तौर पर एक पक्ष की तरफ़ झुककर दूसरे को नाइनसाफ़ी का शिकार बनाना शुरू कर देता है।

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि इनसाफ़ क़ायम करने के लिए ज़रूरी तो वही दो बातें हैं यानी,

(1) घर के सभी लोगों के पूरे-पूरे अधिकारों को जानना और उन्हें अदा करने की कोशिश करना, और

(2) उनके अधिकारों के बारे में आख़िरत (परलोक) की जवाबदेही से डरना।

फिर भी, इनके अलावा कुछेक बातें और भी हैं जिन्हें सामने रखना फ़ायदेमन्द होगा —

एक, यह कि घर के सरपरस्त में ऐसी हिम्मत और साहस होना चाहिए

कि किसी एक पक्ष के हक़ अदा करने के मामले में दूसरे पक्ष से डरे नहीं। क्योंकि फ़र्ज़-अदा न करना या किसी को उसका हक़ न देना अल्लाह तआला को नाराज़ करना है और अल्लाह की नाराज़गी के मुक़ाबले में उस दूसरे पक्ष की नाराज़गी कोई वज़न नहीं रखती जो नहीं चाहता कि जो लोग उसे अच्छे नहीं लगते उनके हक़ अदा हों। अगर वह सिर्फ़ इसलिए नाराज़ हो रहा है कि घर के मुखिया ने वह काम क्यों किया जो अल्लाह ने उसपर फ़र्ज़ किया थ तो उसे नाराज़ होने दिया जाए। क्योंकि हदीस में आया है –

> "मदीनावालों में से एक साहब बयान करते हैं कि अमीर मुआविया (रज़ि॰) ने हज़रत आइशा (रज़ि॰) को लिखा कि आप मुझे नसीहत लिख भेजिए, मगर वह नसीहत बहुत लम्बी न हो। इसलिए हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने अमीर मुआविया (रज़ि॰) को लिखाः सलामती हो तुमपर अल्लाह की! बेशक, मैंने अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल॰) को फ़रमाते सुना कि जिसने लोगों को नाराज़ करके अल्लाह की ख़ुशी तलाश की तो अल्लाह लोगों की तकलीफ़ों से उसे बचाने के लिए काफ़ी हो जाएगा और जिसने अल्लाह को नाराज़ करके लोगों कि ख़ुशी चाही तो अल्लाह उसे लोगों ही के हवाले कर देगा, वस्सलाम।" (हदीस : तिरमिज़ी)

लोगों ही के हवाले कर देगा से मुराद यह है कि अल्लाह तआला खुद उसकी मदद नहीं करेगा और उसे लोगों ही के रहम व करम पर छोड़ देगा कि उसके साथ जो बरताव चाहें करते रहें।

इनसाफ़ क़ायम रखने के लिए दूसरी ज़रूरी बात यह है कि घर के सरपरस्त में इतनी समझ-बूझ और अक़्ल होनी चाहिए कि वह दोनों पक्षों में से किसी एक के सामने भी कोई ऐसी बात न करे जो उनके सम्बन्धों को और ज़्यादा ख़राब करनेवाली हो। क्योंकि जिस तनासुब (अनुपात) से पक्षों के दिल एक-दूसरे से दूर होंगे उतना ही सरपरस्त के लिए उनके बीच इनसाफ़ क़ायम रखना कठिन से कठिन होता जाएगा। यह बड़े अफ़सोस की बात है कि कुछ लोग इतने नासमझ होते हैं कि जब बीवी की मुहब्बत दिल

में उठी तो वे उसके सामने माँ-बाप और भाई-बहनों की शिकायतें शुरू कर देते हैं और जब माँ-बाप और भाई-बहनों को अपनी वफ़ादारी का यक़ीन दिलाना हुआ तो उनके सामने बीवी की ग़लतियाँ और ऐब गिनाने लग जाते हैं। यहाँ तक कि कुछ लोग नादानी की इन्तिहा तक भी पहुँच जाते हैं कि बीवी ने शैहर के घरवालों के बारे में जो नामुनासिब और अपशब्द इस्तेमाल किए होते हैं; वे अपने घरवालों को बता देते हैं या घरवालों ने उसकी बीवी के बारे में जो आपत्तिजनक बातें की होती हैं उनसे बीवी को बाख़बर कर देते हैं। इस मूर्खतापूर्ण नीति का अंजाम इसके सिवा और क्या निकल सकता है कि दोनों पक्षों के सम्बन्ध आपस में और भी ज़्यादा ख़राब हो जाएँ और इससे उस आदमी की मुश्किलें और भी ज़्यादा बढ़ जाएँ जो उन सबके बीच इनसाफ़ और संतुलन क़ायम रखने का ज़िम्मेदार है। हक़ीक़त यह है कि बीवी को अपनी मुहब्बत और क़द्रदानी का यक़ीन दिलाने का यह सबसे बेहूदा तरीक़ा है कि उसके सामने माँ-बाप और बहन-भाइयों पर एतिराज़ किए जाएँ और इसी तरह बहुत ही बेहूदा हरकत यह है कि माँ-बाप और बहन-भाइयों को अपनी फ़रमाँबरदारी और फ़िदाकारी का यक़ीन दिलाने के लिए उनके सामने बीवी के ऐब गिनाने शुरू कर दिए जाएँ। एक समझदार इनसान अगर किसी को अपनी मुहब्बत और क़द्रदानी या फ़रमाँबरदारी और फ़िदाकारी का यक़ीन दिलाना चाहता हो तो उसके लिए सही तरीक़ा उस शख़्स से अच्छा बरताव करना है, न कि दूसरे पक्ष की बुराइयाँ करना।

न्याय और इनसाफ़ क़ायम रखने के लिए तीसरी फ़ायदेमंद बात यह है कि घर के सरपरस्त में ऐसा मज़बूत इरादा, हिम्मत और स्थिरता होनी चाहिए कि वह हर एक के साथ न्याय करने पर अड़ा रहे और अपने तौर-तरीक़े से और जब ज़रूरत हो तो ज़बान से भी घरवालों पर यह स्पष्ट कर दे कि वह किसी स्थिति में भी किसी एक की ख़ातिर किसी दूसरे का हक़ नहीं मारेगा। अगर घर का सरपरस्त इस मामले में मज़बूती के साथ जमा रहेगा तो वह देख लेगा कि आख़िरकार सभी लोग राज़ी हो जाएँगे। क्योंकि इनसान का स्वभाव ही ऐसा है कि जिस मामले में उसे कामयाबी

हासिल न हो उसका ख़याल उसके दिल से निकल जाता है। मिर्ज़ा ग़ालिब का एक मशहूर शेर है—

सँभलने दे मुझे ऐ नाउम्मीदी क्या क़ियामत है
कि दामाने ख़याले यार छूटा जाए है मुझसे

इस शेर में इसी हक़ीक़त को बयान किया गया है कि जब इनसान किसी पसन्दीदा चीज़ को हासिल करने में मायूस हो जाता है तो फिर उसकी ख़ाहिश भी उसके दिल से निकल जाती है। इसलिए जब घरवालों को अच्छी तरह पता चल जाएगा कि वे घर के ज़िम्मेदार से नाइनसाफ़ी नहीं करवा सकते तो वे विवश होकर हालात से समझौता कर लेंगे और मुखिया के लिए इस स्थिति में इनसाफ़ क़ायम करने की और भी राहें पैदा हो जाएँगी। इसके विपरीत अगर घर का ज़िम्मेदार ऐसा कच्चे कानों और डगमगाती रायवाला होगा कि जिस पक्ष ने कान भरे उसी से मुतास्सिर हो गया तो दोनों पक्षों के हौसले बुलन्द होते जाएँगे और हर कोई उसे अपनी तरफ़ खींचने की कोशिश करेगा, और फिर जिसके लिए उसके दिल में ज़्यादा नर्मी होगी या जो ज़्यादा होशियार और तेज़ ज़बान होगा, वह उसे अपने खूँटे से बाँध लेगा, जिसके बाद फिर उसके लिए दूसरे पक्ष से इनसाफ़ करना अगर नामुमकिन नहीं तो मुशकिल ज़रूर हो जाएगा और ऐसे कमज़ोर इरादेवाले इनसान से इनसाफ़ की उम्मीद कम ही की जा सकती है।

घरवालों को आपस में टकराते रहने से दूर रखने या कम से कम उनके टकराव को कम करने का एक तरीक़ा और भी है कि जब घर के किसी आदमी को किसी दूसरे के ख़िलाफ़ कोई शिकायत पैदा हो तो उसकी शिकायत को तन्हाई में न सुना जाए, बल्कि कोशिश की जाए कि शिकायत उसी आदमी के सामने सुनी जाए जिसके ख़िलाफ़ शिकायत पैदा हुई हो। एक औरत ने अपनी सुसराल का हाल बताते किया हुए इसी तरह का एक वाक़िआ बयान किया कि हमारे यहाँ लड़ाई-झगड़े बहुत कम होते हैं हालाँकि हम तीन-चार देवरानियाँ-जेठानियाँ सास के साथ रहती हैं। लड़ाई कम होने की वजह एक ख़ास बात है जिसपर घर के मर्द सख़्ती से अमल कराते हैं, वह

यह कि घर के जिस सदस्य को भी किसी दूसरे से कोई शिकायत हो, वह अपनी शिकायत उस दूसरे की मौजूदगी में बयान करे। उन्होंने बताया की शादी के बाद एक बार मुझे अपनी किसी जेठानी के ख़िलाफ़ कोई शिकायत पैदा हुई और मैंने उसका ज़िक्र अपने शौहर से किया। मेरे शौहर ने मेरी बात का कोई जवाब न दिया और उठकर चल दिए और कुछ मिनट ही बीते थे कि वे मेरी जेठानी को अपने साथ लेकर आ गए और कहने लगे कि हाँ फ़रीदा, अब बताओ तुम्हें भाभी से क्या शिकायत है?

वह कहने लगीं कि मैं तो भौंचक्का ही रह गई। एक बार तो ग़लती हो गई, मगर फिर उसके बाद आज तक क्या मजाल जो मैंने अपने शौहर से किसी की शिकायत की हो। उस औरत ने बताया कि हमारे घर के सारे मर्द इस उसूल पर बहुत सख़्ती से अमल करते हैं और सिर्फ़ इसी एक एहतियात की वजह से घर का माहौल काफ़ी हद तक झगड़ों से बचा रहता है। उन्होंने अपने तौर-तरीक़ों से हमपर यह भी अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया कि वे हमारी शिकायत सुनने और उसपर हमदर्दी से ग़ौर करने के लिए तैयार हैं, मगर सिर्फ़ उसी हालत में कि शिकायत उस आदमी के सामने की जाए जिसके ख़िलाफ़ वह शिकायत पैदा हुई हो। इस एहतियात का नतीजा यह है कि शायद ही कोई किसी की शिकायत करता हो। क्योंकि शिकायतें तो उसी हालत में फलती-फूलती, बढ़ती और राई का पर्वत बनती हैं जब सामने कोई मौजूद न हो और शिकायत के बीच जो नमक-मिर्च लगाई जाती है और झूठी बातों की मिलावट की जाती है उसका जवाब देनेवाला कोई नहीं होता। अगर दूसरा आदमी सामने बैठा हो और हर ग़लत बात करते हुए यह ख़तरा हो कि अभी उसका झूठ सामने आ जाएगा तो शिकायत करनेवाला बड़ी सावधानी से बात करेगा।

आम तौर पर देखा गया है कि जब किसी को किसी के ख़िलाफ़ किसी के कान भरने हों तो वह घटना को इस अन्दाज़ से पेश करता है कि घटना के जो हिस्से शिकायत करनेवाले के ख़िलाफ़ जाते हैं वह उन्हें छुपा ले जाता है और जिन हिस्सों से दूसरा दोषी साबित होता है उन्हें वह बढ़ा-चढ़ाकर पेश करता है। अब जिससे शिकायत की जा रही हो अगर उसे पूरी घटना

का पता न हो और साथ ही वह ज़्यादा समझ-बूझ भी न रखता हो तो उसको तो प्रभावित होना ही है, क्योंकि मामला तफ़सील के साथ तो उसके सामने आया ही नहीं। लेकिन अगर शिकायत के वक़्त वह आदमी भी मौजूद हो जिसके ख़िलाफ़ शिकायत की जा रही हो तो वह अपनी सफ़ाई के लिए मामले के उन पहलुओं को भी सामने ले आता है जो शिकायत करनेवाले के ख़िलाफ़ जा रहे होते हैं और जब मामला अपनी पूरी शक्ल में सामने आ जाता है तो एक तरफ़ तो शिकायत सुननेवाले को सही फ़ैसला करने में मदद मिलती है और दूसरी तरफ़ शिकायत करनेवाले की मनगढ़न्त बातों पर जो रोक लगती है उससे उसके शिकायत करने का सारा मज़ा ही मारा जाता है। इसलिए उम्मीद की जा सकती है कि वह ऐसा बदमज़ा काम बार-बार नहीं करेगा।

बीवी से नाइनसाफ़ी करने की कुछ और शक्लें

स्पष्ट रहे कि बीवी के साथ नाइनसाफ़ी करने की सिर्फ़ यही शक्ल नहीं होती कि कोई मर्द अपने दूसरे रिश्तेदारों और घरवालों के सिखाने-पढ़ाने का बहुत असर ले, बल्कि कई शौहर अपनी अय्याश तबीअत या मिज़ाज के शक्कीपन, या फ़ितरतन बद-मिज़ाजी या हद से बढ़ा हुआ कम ख़र्चीलापन या बीवियों के सगे-सम्बन्धियों से कोई दुश्मनी होने की वजह से भी बीवियों से नाइनसाफ़ी और उनपर अत्याचार करते हैं और उस महान और बुज़ुर्ग पैग़म्बर की हिदायत को भूल जाते हैं जिसपर ईमान लाने का वे दावा करते हैं।

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया –
"मोमिनों में सबसे मुकम्मल (पूर्ण) ईमानवाला वह है जिसका अख़लाक़ सबसे अच्छा हो और तुममें सबसे ज़्यादा अच्छे वे हैं जो अपनी बीवियों के लिए अच्छे हैं।" (हदीस : तिरमिज़ी)

ये लोग क़ुरआन की इस हिदायत को भी नज़रन्दाज़ कर देते हैं कि –
"उनके (बीवियों के) साथ भले तरीक़े से ज़िन्दगी बसर करो।"

(क़ुरआन, 4:19)

और इस हुक्म को भी भूल जाते हैं कि –

"औरतों के लिए भी सामान्य नियम के अनुसार वैसे ही अधिकार हैं जैसे मर्दों के अधिकार उनपर हैं।" (क़ुरआन, 2:228)

फिर कुछ मर्द तो ऐसे ज़ालिम और संगदिल होते हैं कि बीवियों को न ढंग से रखते हैं और न उन्हें क़ानूनी तौर पर आज़ाद ही करते हैं, बल्कि उम्र-भर लटकाए रखते हैं। हालाँकि अल्लाह तआला का खुला आदेश है –

" और सिर्फ़ सताने के लिए उन्हें न रोके रखना कि यह ज़ुल्म होगा, और जो ऐसा करेगा वह हक़ीक़त में अपने ही ऊपर ज़ुल्म करेगा।" (क़ुरआन2:231)

बीवी के साथ नाइनसाफ़ी करने की कई शक्लें हैं, मगर उनमें सबसे ज़्यादा सख़्त शायद यह है कि अगर एक से ज़्यादा बीवियाँ हों तो उनमें से किसी एक की तरफ़ ज़्यादा तवज्जोह हो और दूसरी को ऐसा नज़रन्दाज़ (उपेक्षित) किया जाए मानो उसका वुजूद ही नहीं।

इस्लाम में इस विषय में सख़्त चेतावनी दी गई है और हुक्म दिया गया है कि सारी बीवियों से बराबरी का बर्ताव किया जाए। भरण-पोषण का मसला हो या देख-भाल का या अच्छे व्यवहार, हमदर्दी और साथ रहने का या किसी और बात का जिसका सम्बन्ध दाम्पत्य जीवन से हो, सबके बारे में यही हिदायत दी गई है कि सभी बीवियों को एक दरजे में रखा जाए। यानी सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाए। अलबत्ता दिल पर चूँकि इनसान का कोई ज़ोर नहीं है इसलिए अगर शौहर के दिल में फ़ितरी तौर पर किसी एक बीवी की मुहब्बत दूसरी से ज़्यादा हो तो उसमें उसे मजबूर समझा जाएगा। हालाँकि यह छूट दिल के जज़्बात तक ही के लिए है, जहाँ तक ज़ाहिरी सुलूक की बात है शौहर के लिए यह ज़रूरी है कि जिस बीवी से कम मुहब्बत है उससे भी वैसा ही सद्व्यवहार करे जैसा उससे करता है जिससे मुहब्बत है, नहीं तो अल्लाह तआला के यहाँ उसकी सख़्त पकड़ होगी।

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया —

"जिस इनसान की दो बीवियाँ हों और वह दोनों में से एक की तरफ़ झुके — और उसके सारे हक़ उसे दे और उसके मुक़ाबले में दूसरी (बीवी) के हक़ अदा न करे तो वह क़ियामत के दिन इस हाल में आएगा कि उसका आधा धड़ गिरा हुआ होगा।"

(हदीस : अबू दाऊद)

हदीसों से पता चलता है कि नबी (सल्ल॰) अपनी बीवियों (रज़ि॰) के बीच पूरी सतर्कता के साथ न्याय और संतुलन रखते थे। आप (सल्ल॰) का तरीक़ा था कि बारी-बारी हर बीवी के पास रहते थे। फिर जब आप (सल्ल॰) उस मर्ज़ में घिर गए, जिसमें फिर आप (सल्ल॰) दुनिया से इन्तिक़ाल कर गए, तो आख़िरी दिन आप (सल्ल॰) ने हज़रत आइशा (रज़ि॰) के घर में गुज़ारे, मगर इसके लिए आप (सल्ल॰) ने बाक़ी दूसरी बीवियों से इजाज़त माँगी थी जो उन्होंने दे दी थी।

घर की मालिकिन की ज़िम्मेदारी

यहाँ इस बात को भी दिल और दिमाग़ में बिठा लेना चाहिए कि घर में न्याय और इनसाफ़ क़ायम करने की सारी ज़िम्मेदारी सिर्फ़ घर के मुखिया मर्द पर ही लागू नहीं होती, बल्कि घर की मालिकिन की भी इस मामले में बहुत हद तक ज़िम्मेदारी होती है। रोज़ी कमाने में मर्द का ज़्यादा वक़्त घर से बाहर गुज़रता है और इस बीच घर की समस्याओं को आम तौर पर घर की मालिकिन ही को निबटाना होता है। इसके अलावा मर्द के घर में होने की हालत में भी बहुत सारे काम घर की मालिकिन ही के ज़िम्मे होते हैं। इसलिए वह इस ज़िम्मेदारी से बरी (मुक्त) नहीं हो सकती कि जिन घरवालों के मामलात की वह ज़िम्मेदार है, उनके साथ इनसाफ़ करे। घर के बच्चे, काम करनेवाले नौकर-चाकर, आने-जानेवाले, रिश्तेदार या ग़ैर रिश्तेदार, मेहमान, शौहर के सगे-सम्बन्धी लोग चाहे वे उस घर में स्थाई रूप से रहते हों या कभी-कभार कुछ वक़्त के लिए ठहरते हों,

इन सबके मामले में इनसाफ़ से काम लेना उसके ख़ुदा पर ईमान रखनेवाली होने की दलील है।

यहाँ इस बात को भी नज़र में रखना ज़रूरी है कि इनसाफ़ क़ायम रखने की ज़िम्मेदारी उसी सूरत में होगी कि जब उसे ख़ास इख़्तियार और अधिकार हासिल हों। कुछ क़बीले और ख़ानदान में घर की मालिकिन को घर के मामले में बहुत ज़्यादा इख़्तियार हासिल होते हैं और घर का ज़िम्मेदार मर्द बहुत कम मामले में हस्तक्षेप करता है। ऐसे घरों में घर की मालिकिन की इनसाफ़ क़ायम रखने की ज़िम्मेदारी ज़्यादा होगी। मगर जिन घरानों या ख़ानदानों में इख़्तियारात घर के ज़िम्मेदार मर्द अपने ही हाथों में रखे होते हैं और घर की मालिकिन को बहुत कम इख़्तियार हासिल होता है, वहाँ उसकी ज़िम्मेदारी उतनी ही कम होगी।

फिर कुछ घराने ऐसे भी होते हैं जहाँ कमानेवाला चाहे जवान बेटा या बेटे ही हों मगर घर के सारे अधिकार बूढ़ी माँ के हाथ में होते हैं, तो ऐसी हालत में उस माँ ही की ज़िम्मेदारी होगी कि वह सारे घरवालों से जिनमें उसकी बहू या बहुएँ भी शामिल होंगी, इनसाफ़ करे। मगर जिन घरानों में घर के सारे अधिकार कमानेवाले की अपनी बीवी के हाथ में हों और बूढ़े माँ-बाप और बहन-भाई साथ रह रहे हों तो वहाँ उस बीवी की ज़िम्मेदारी होगी कि सारे घरवालों के साथ, जिनमें उसके सास-ससुर सभी शामिल होंगे न्याय और इनसाफ़ का सुलूक करे। सारांश यह कि जहाँ नाइनसाफ़ी कर गुज़रने का अधिकार प्राप्त होगा वहीं यह ज़िम्मेदारी भी लागू होगी कि नाइनसाफ़ी करके दुनिया की रुस्वाई और आख़िरत (परलोक) का अज़ाब समेटने के बजाय इनसाफ़ से काम लेकर दुनिया और आखिरत दोनों जहानों की कामयाबी हासिल करने का बन्दोबस्त किया जाए।

वैसे यह भी हक़ीक़त है कि कुछ-न-कुछ इख़्तियार और अधिकार तो आम तौर पर हर इनसान को हासिल होता ही है इसलिए यह कहना ग़लत न होगा कि हर इनसान इस ख़तरे में घिरा हुआ है कि अपने अधिकार क्षेत्र के अन्दर चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, वह कोई नाइनसाफ़ी कर

जाए और अपने लिए नुक़सान समेट ले। अपने-आपको इस नुक़सान से बचा लेना बहुत बड़ी कामयाबी है।

घर की मालिकिन की शायद सबसे बड़ी आज़माइश सौतेली औलाद के साथ इनसाफ़ करना है। यह अजीब बात है कि औरत अपने बच्चे के लिए जितनी मेहरबान और स्नेहमय् होती है उतनी ही उन बच्चों के मामले में कठोर हो जाती है, जो यद्यपि उसके अपने शौहर की औलाद होते हैं लेकिन उनकी माँ कोई और औरत होती है। फिर जब हालत यह हो कि उन बच्चों की माँ मर चुकी हो या उसे तलाक़ मिल चुकी हो और वह बच्चों की देख-भाल के लिए उनके पास मौजूद न हो तो फिर ये बच्चे आम तौर से बिल्कुल ही सौतेली माँ के रहमो-करम पर ही होते हैं कि चाहे तो उनसे अच्छा सुलूक करे या कम-से-कम इनसाफ़ का सुलूक करे और चाहे तो न सिर्फ़ खुद उनको ज़ुल्म व ज़्यादती का निशाना बनाए बल्कि तरह-तरह की साज़िशों और चालों से बाप को भी उनसे नफ़रत करने पर आमादा कर दे।

किसी औरत के सामने कभी ऐसी हालत आ जाए कि उसे बिन माँ के बच्चों से मामला करना हो तो उसे याद रखना चाहिए कि यक़ीनी तौर पर ऐसा हो सकता है कि अपनी नमाज़, रोज़े की पाबन्दी और दीन के दूसरे हुक्मों की पैरवी के बावजूद उन बच्चों के साथ नाइनसाफ़ी करके, वह दुनिया की ज़िल्लत और आख़िरत का अज़ाब समेट ले। जिन बच्चों के लिए दिल में ममता न हो उनके साथ वैसा ही सुलूक करना, जैसा उनसे किया जा रहा हो, जिनके लिए ममता मौजूद है कोई आसान काम नहीं है। फिर भी यह कोई नामुमकिन काम भी नहीं है। ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि ज़िन्दगी को उसी दृष्टि से देखा जाए जिससे अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उसे दिखाना चाहा है और उन हक़ीक़तों को सामने रखा जाए जो तंग-नज़रों को तो नज़र नहीं आया करतीं मगर दीन की सही रूह रखनेवालों की नज़रों पर दिन के उजाले की तरह ज़ाहिर हैं।

अल्लाह और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इनसान के लिए इसी बात को पसन्द किया है कि उसकी नज़र में ज़िन्दगी, आख़िरत (परलोक) की

खेती हो और जो हक़ीक़तें तंग-नज़रों को नज़र नहीं आया करतीं मगर दीनी रूह रख़नेवालों पर दिन के उजाले की तरह ज़ाहिर होती हैं, इनमें एक हक़ीक़त यह भी है कि किए का बदला मिलकर रहता है। मरने के बाद आख़िरत (परलोक) में भी और कभी-कभी मौत से पहले इसी दुनिया में भी, और कोई हैरत की बात नहीं कि यह बदला उन दिशाओं से मिल जाए जहाँ कभी ज़ुल्म करनेवाले का ध्यान भी न गया हो।

अब जो औरत अपनी इस खेती में ज़ुल्म के बीज बोएगी, वह आख़िर सुकून, आराम और फ़ायदे की फ़सल कैसी काटेगी। ज़ुल्म के बीज तो नुक़सान और तकलीफ़ों ही की फ़सल तैयार करेंगे। इसी तरह जो माँ खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, रहने-सहने, काम, आराम, शिक्षा, शादी-ब्याह और ज़िन्दगी के दूसरे कामों में सगी और सौतेली औलाद में फ़र्क़ करती है और अपने बच्चों को आराम और राहत देती है और उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए प्रयत्नशील है, और उनके मुक़ाबले में सौतेली औलाद को तकलीफ़ देती, उन्हें महरूमियों का निशाना बनाती और उनकी शिक्षा और भलाई पर माल ख़र्च करने से जी चुराती है। वह यह भूल जाती है कि बाप की कमाई पर तो सब बच्चों का समान रूप से बराबर अधिकार है। जो बच्चे माँ से महरूम हो गए हैं वे इससे तो महरूम नहीं हुए कि उनका उनके बाप की कमाई पर कोई हक़ नहीं । अब अगर घर की मालिकिन का बाइख़्तियार होना उन्हें अपने हक़ से महरूम कर रहा है तो फिर इसका गुनाह उस बाइख़्तियार मालिकिन के सिर ही तो होगा। साथ ही उस लापरवाह बाप के सिर भी होगा जो यह देखने की तकलीफ़ नहीं करता कि बिन माँ के बच्चे, जो उसी की औलाद हैं, उनको उनका हक़ मिल रहा है या नहीं। फिर उस घर की ज़िम्मेदार मालिकिन को क्या मालूम कि बिन माँ के बच्चों पर ज़ुल्म व अत्याचार करने का अज़ाब किस-किस शक्ल में उसके सामने आएगा। यह इस शक्ल में भी तो उसके सामने आ सकता है कि उसके अपने बच्चों को दुखों और महरूमियों का निशाना बना दे। बहुत-सी औरतें बड़ी कोशिश करके सौतेली औलाद को बाप की जायदाद से महरूम करने का बन्दोबस्त कर लेती हैं और वे नहीं जानतीं कि दूसरों का हक़ छीनकर जो कुछ उन्होंने

अपने बच्चों को दिलवाया है, वह हराम माल है और उन्हें पता नहीं कि यह हराम माल उनके हलाल माल को भी कभी-कभी साथ ले डूबता है।

स्पष्ट है कि किसी औरत के दिल में जो भावनाएँ उस बच्चे के लिए होंगी जो उसके अपने जिगर का टुकड़ा है, वह उसके लिए नहीं हो सकतीं जो किसी और के जिगर का टकड़ा है, और भवनाओं के मामले में उसे मजबूर भी नहीं क़िया गया है। जिस बात को ज़रूरी ठहराया गया है वह उस दूसरे के जिगर के टुकड़े के हक़ और अधिकार की अदायगी है और उससे अच्छा बरताव है, और उस अच्छे बरताव और अधिकार की अदायगी में आम तौर पर वही औरतें कामयाब होती हैं जिन्हें उनके हक़ों और अधिकारों की जानकारी होती हैं और जिन्हें उनके बारे में आख़िरत में जवाबदेही का ख़ौफ़ होता है। ऐसी शरीफ़ और ख़ुदा-तरस औरतों को भी देखा गया है कि वे अपने बच्चों से भी ज़्यादा उन बच्चों के मामले में फ़िक्रमन्द होती हैं जो माँ की ममता और उसके साए से महरूम होते हैं या उनकी माँ होती तो है मगर बेइख़्तियारी की हालत में होती है। ऐसी इनसाफ़-पसन्द औरतों का बदला अल्लाह के ज़िम्मे है और हो सकता है कि उस बदले का एक हिस्सा यह भी हो कि उनके अपने बच्चों को अल्लाह तआला दुनिया और आख़िरत दोनों में ख़ुशहाल और कामयाब बना दे।

यह बड़े दुख की बात है कि जहाँ अनगिनत मर्द ऐसे हैं जो अल्लाह और अल्लाह के रसूल के हुक्मों को ही अहमियत देनेवाली बीवियों को उन राहों पर चलने के लिए मजबूर करते हैं जिनपर चलने के लिए उनका दिल इजाज़त नहीं देता, वहीं ऐसी औरतें भी मौजूद हैं जो अपनी शरारतों से हलाल रोज़ी पर सब्र करनेवाले शौहरों को हराम का पैसा लेने पर मजबूर करती हैं और इनसाफ़ करने की ख़ाहिश रखनेवाले शौहरों से नाइनसाफ़ियाँ करवाने की कोशिश में लगी रहती हैं। यह एक मुसलमान औरत की शान से गिरी हुई बात है कि वह दुनिया के मामूली फ़ायदों के लिए या दिल की जलन को ठण्डा करने के लिए अपने जीवन-साथी को बेइनसाफ़ बनाने की तमन्ना करे। इस के विपरीत उससे, यह तो उम्मीद रखी जाती है कि अगर शौहर नाइनसाफ़ी की तरफ़ झुके तो अपनी अक़्लमन्दी से उसे इनसाफ़ की तरफ़ लाने की कोशिश करे ताकि वह दुनिया और आख़िरत के अज़ाब (यातना) और रुस्वाई से बच जाए।

औलाद के बीच इनसाफ़

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि —

"(ऐ लोगो!) अपनी औलाद के बीच इनसाफ़ करो, अपनी औलाद के बीच इनसाफ़ करो।" (हदीस : नसई)

देखने में तो यही महसूस होता है कि औलाद जैसी प्यारी चीज़ से भला कोई माँ-बाप कैसे नाइनसाफ़ी करेंगे, मगर हक़ीक़त यह है कि कुछ लोग औलाद से भी नाइनसाफ़ी कर गुज़रते हैं। इसकी कई शक्लें होती हैं। कभी-कभी औलाद एक से ज़्यादा माओं से होती है तो बाप का झुकाव जिस बीवी की तरफ़ ज़्यादा होता है वह उसके बच्चों की तरफ़ ज़्यादा ध्यान देता है और दूसरे बच्चों को नज़रन्दाज़ करता रहता है। कभी ऐसा भी होता है कि बीवी की मौत हो जाती है या उसे तलाक़ दे दी जाती है और दूसरी शादी कर ली जाती है तो अब जिन बच्चों की माँ मौजूद नहीं है उनसे ध्यान हटा लिया जाता है और उनके हक़ अदा करने में कोताही की जाने लगती है, और जिन बच्चों की माँ मौजूद है उनसे अच्छा सुलूक होता है।

ऐसी हालत में आम तौर से बाप को पहली बीवी की औलाद में ख़राबियाँ भी नज़र आनी शुरू हो जाती हैं और वे अपनी नाइनसाफ़ी को उचित समझने लगते हैं। हालाँकि अकसर होता यह है कि शरारत तो वे बच्चे भी करते हैं जिनकी माँ मौजूद होती है और वे भी करते हैं जिनकी माँ मौजूद नहीं होती, मगर माँ वाले बच्चों की माँ उनकी शरारत पर परदा डाल देती है, और जिनकी माँ मौजूद नहीं होती उनकी शरारतें ज़ाहिर हो जाती हैं और बाप यही समझते रहते हैं कि पहली बीवी के बच्चे ज़्यादा नटखट और नाफ़रमान हैं और दूसरी के शरीफ़ और फ़रमाँबरदार हैं। इसी तरह कुछ घरानों में लड़के और लड़की के बीच बहुत फ़र्क़ किया जाता है और लड़के के हक़ तो ख़ुशी-ख़ुशी अदा किए जाते हैं और लड़कियों को बोझ समझा जाता है। ऐसे लोगों को या तो अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की हिदायतों की जानकारी नहीं होती या फिर अपने दुर्भाग्य के कारण जानते-बूझते ध्यान नहीं देते।

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

"जिस आदमी की बेटी हो, फिर न तो वह उसे ज़िन्दा दफ़्न करे और न उसे ज़लील (कमतर) समझे और न अपने बेटे को उसपर तरजीह (प्राथमिक्ता) दे तो अल्लाह उसे जन्नत में दाख़िल करेगा।" (हदीस : अबू दाऊद)

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

"जिसने तीन बेटियों की परवरिश की फिर उन्हें अच्छी तालीम व तरबियत देकर उनकी शादी कर दी और उनसे अच्छा सुलूक किया तो उसके लिए जन्नत है।" (हदीस : अबू दाऊद)

हज़रत उक़बा बिन आमिर (रज़ि॰) बयान करते है कि मैंने नबी (सल्ल॰) को फ़रमाते सुना –

" जिस इनसान की तीन बेटियाँ हों और वह उनके मामले में सब्र से काम ले और अपनी कमाई से उन्हें खिलाए, पिलाए और पहनाए तो वे बेटियाँ क़ियामत के दिन उसके लिए आग से बचाव का ज़रिया हो जाँएगी।" (हदीस : इब्ने माजा)

बड़े अफ़सोस की बात है कि बहुत-से ख़ानदानों में बेटी के उन हक़ों की तरफ़ ध्यान देने की ज़रूरत महसूस नहीं की जाती जो इस्लाम ने क़ायम कर रखे हैं। ख़ास तौर पर तरके (पैतृक सम्पत्ति) के मामले में तो पूरी कोशिश यही होती है कि बेटी को हिस्सा न मिले, ताकि ख़ानदान की जायदाद और माल व दौलत दूसरे ख़ानदानों में न चली जाए। हालाँकि बेटी का वारिस होना क़ुरआन मजीद में स्पष्ट रूप से बयान कर दिया गया है :

"मर्दों के लिए उस माल में हिस्सा है जो माँ-बाप और क़रीबी रिश्तेदारों ने छोड़ा हो और औरतों के लिए भी उस माल में हिस्सा है जो माल माँ-बाप और क़रीबी रिश्तेदारों ने छोड़ा हो, चाहे थोड़ा हो या बहुत, और यह हिस्सा अल्लाह कि तरफ़ से निश्चित किया हुआ है।" (क़ुरआन, 4:7)

और फ़रमाया –

"तुम्हारी औलाद के बारे में अल्लाह तुम्हें हुक्म देता है कि मर्द का हिस्सा दो औरतों के बराबर है। अगर मरनेवाले की वारिस दो से ज़्यादा लड़कियाँ हों तो उन्हें विरासत का दो तिहाई दिया जाए और अगर एक ही लड़की वारिस हो तो आधी विरासत उसकी है।" (क़ुरआन, 4:11)

क़ुरआन मजीद की इन हिदायतों से बेटी का विरासत में हिस्सेदार होना बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। यह जो विरासत में बेटी को बेटे से आधा दिया जाता है, यह भी इनसाफ़ ही का तक़ाज़ा है, क्योंकि बेटों के कन्धों पर जो दूसरों की देख-भाल और भरण-पोषण का बोझ होता है वह बेटी के कन्धों पर नहीं आता। इसलिए इनसाफ़ का तक़ाज़ा यही था कि जिसपर माली ज़िम्मेदारियाँ ज़्यादा हैं उसे ज़्यादा दिया जाए।

मतलब यह कि माँ-बाप को यही हुक्म दिया गया है कि सभी बच्चों के साथ न्याय और इनसाफ़ का सुलूक करें। इस हिदायत से लापरवाई माँ-बाप और बच्चों के आपसी ताल्लुक़ात पर बहुत बुरा असर डालती है।

हज़रत नोमान बिन बशीर (रज़ि॰) कहते हैं कि मेरे बाप हज़रत बशीर (रज़ि॰) ने अपने माल में से कुछ हिस्सा मेरे नाम किया। इसपर मेरी माँ अमरा बिन्ते रवाहा (रज़ि॰) ने कहा कि मैं इसपर राज़ी नहीं जब तक कि आप अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को इसपर गवाह न बना लें। मेरे बाप नबी (सल्ल॰) के पास गए ताकि आप (सल्ल॰) को उस हिबा पर गवाह बनाएँ जो उन्होंने मेरे नाम किया था। नबी (सल्ल॰) ने उनसे पूछा कि क्या तुमने अपनी सारी औलाद को इसी तरह दिया है? उन्होंने बताया कि नहीं। इसपर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अल्लाह से डरो और अपनी औलाद के बीच इनसाफ़ करो। यानी बराबरी का सलूक करो अतः मेरे बाप लौट आए और मेरे नाम जो किया था, वापस ले लिया। (हदीस : मुस्लिम)

मुस्लिम शरीफ़ ही की एक दूसरी रिवायत में इसी घटना का उल्लेख

इस तरह हुआ है और उसके आख़िर में ये शब्द हैं –

"नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि ऐ बशीर! क्या इसके अलावा तेरे और भी लड़के हैं? उन्होंने जवाब दिया : जी हाँ। नबी (सल्ल॰) ने पूछा कि क्या उन सबको इतना-इतना ही माल दिया है? उन्होंने जवाब दिया कि नहीं। इसपर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि फिर मुझे गवाह न बनाओ, क्योंकि मैं ज़ुल्म पर गवाह नहीं बनता।" (हदीस : मुस्लिम)

बच्चों के बीच इनसाफ़ न करने का एक बुरा नतीजा यह निकलता है कि ख़ुद बच्चों के बीच दुश्मनी और मनमुटाव हो जाता है। क्योंकि उनमें से जिन बच्चों को महरूम रखा जाता है उनके दिलों में उन बहन-भाइयों के ख़िलाफ़ नफ़रत पैदा हो जाती है जिनके हक़ ज़्यादा अच्छे तरीक़े से अदा किए जाते हैं और जिन्हें उनके हक़ से ज़्यादा दिया जाता है। यह बात आख़िरकार बच्चों के बीच फूट पैदा कर देती है और यह फूट कभी-कभी आपसी दुश्मनी का रूप ले लेती है। फिर यह बात भी होती है कि जिन बच्चों के साथ नाइनसाफ़ी की जाती है वे माँ-बाप को वह मुहब्बत और इज़्ज़त और आदर नहीं दे पाते जो एक औलाद को देना चाहिए। इस तरह नाइनसाफ़ी से काम लेकर माँ-बाप एक तरफ़ तो अल्लाह तआला के नज़दीक गुनहगार होते हैं और दूसरी तरफ़ सांसारिक रूप से भी नुक़सान उठाते हैं। क्योंकि बहुधा वे उन बच्चों की सेवा और सद्व्यवहार से महरूम हो जाते हैं जिनके साथ वे नाइनसाफ़ी कर चुके होते हैं और फिर समाज की नज़रों में भी वे 'ज़ालिम' ही समझे जाते हैं। इसलिए माँ-बाप की दीनदारी ही का नहीं, अक़्लमन्दी और समझदारी का भी तक़ाज़ा यही है कि वे औलाद के बीच इनसाफ़ और न्याय करें।

अल्लाह तआला ने 'सूद' (ब्याज) को हराम, 'ज़कात' को फ़र्ज़ (अनिवार्य), 'ख़ैरात' दान को नेकी और विरासत के बटँवारे को ज़रूरी ठहराकर यह बन्दोबस्त कर दिया है कि दौलत थोड़े-से हाथों में जमा हो जाने के बजाय बहुत सारे हाथों तक पहुँचती और चक्कर लगाती रहे। एक इनसान जब 'ज़कात' (दान) देता है या जब उसकी मीरास का बँटवारा

होता है तो वह दौलत जो समाज के एक ही घर में थी, टुकड़े-टुकड़े होकर बहुत-से घरों में फैल जाती है। फिर विरासत जब बेटों में वितरित होती है, तो हालाँकि एक घर की दौलत एक से ज़्यादा घरों में बँट जाती है फिर भी वह दौलत उसी ख़ानदान में रहती है, लेकिन जब बेटियों को विरासत में हिस्सा दिया जाता है तो नतीजा यह होता है कि दौलत उस ख़ानदान से निकलकर एक से ज़्यादा ख़ानदानों में पहुँच जाती है, यानी बेटियों को हिस्सा देने से दौलत का गति में आने का काम और तेज़ होता जाता है। इसलिए जो लोग बेटियों को विरासत से महरूम करना चाहते हैं वे एक तरफ़ तो अल्लाह के नाफ़रमान बनते हैं और दूसरी तरफ़ उस समाज को भी नुक़सान पहुँचाते हैं जिसका वे ख़ुद भी एक हिस्सा होते हैं।

सामाजिक जीवन में इनसाफ़

पिछले पृष्ठों मे जिस इनसाफ़ के बारे में बयान किया गया है उसका सम्बन्ध केवल घर और परिवार तक सीमित है। लेकिन जैसा कि स्पष्ट है कि इनसाफ़ केवल घर तक ही सीमित नहीं होता, बल्कि समाज को शांतिमय और उत्पातहीन बनाए रखने के लिए समाज में हर जगह न्याय और इनसाफ़ को स्थापित करना अत्यन्त ज़रूरी है। यहाँ संक्षेप में कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं –

कोई व्यक्ति चाहे अमीर हो या ग़रीब, ज़िन्दगी की ज़रूरी चीज़ों को प्राप्त करने के लिए व्यापारिक वर्ग से सम्बन्ध रखने पर विवश है। किन्तु ये कारोबार करनेवाले लोग अगर जनता से पूरी क़ीमत तो वुसूल करें लेकिन उन्हें चीज़ तौल में कम या दोषयुक्त दें तो यह खुली नाइनसाफ़ी है जिससे वे पूरे समाज को दुख पहुँचाते हैं। इसलिए उन्हें हुक्म दिया गया है कि –

"और नाप-तौल में पूरा इनसाफ़ करो।" (क़ुरआन, 6:152)

एक दूसरी जगह है –

"और न्याय के साथ ठीक-ठीक तौलो और तौल में कमी न करो।" (क़ुरआन, 55:9)

समाज में छोटे-मोटे झगड़ों से लेकर बड़े-बड़े मुक़द्दमों तक में फ़ैसले करते हुए अकसर गवाही की ज़रूरत पड़ती है। इसलिए गवाही के बारे में भी ताकीद की गई है कि –

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह के लिए सत्य पर क़ायम रहनेवाले और न्याय की गवाही देनेवाले बनो।" (क़ुरआन, 5:8)

इसी तरह जब आपस में एक तयशुदा मुद्दत (निश्चित समय) तक के लिए क़र्ज़ का लेन-देन किया जाए तो हुक्म दिया गया है कि लिखा-पढ़ी करली जाए। फ़रमाया गया –

"तुम्हारे बीच एक लिखनेवाला इनसाफ़ के साथ लिख दे।"

(क़ुरआन, 2:282)

मुसलमानों को हुक्म दिया गया है कि अगर दो मुसलमान गिरोह आपस में लड़ पड़ें तो उनके बीच समझौता करा दिया करो। फिर अगर उनमें से एक गिरोह दूसरे गिरोह पर ज़ुल्म व ज़्यादती करे तो उस ज़ुल्म करनेवाले गिरोह से लड़ो यहाँ तक कि वह अल्लाह के हुक्म को मानने पर तैयार हो जाए। फिर वह पलट आए तो –

"उनके बीच इनसाफ़ के साथ समझौता करा दो और इनसाफ़ करो कि अल्लाह इनसाफ़ करनेवालों से मुहब्बत रखता है।"

(क़ुरआन, 49:9)

न्याय के साथ समझौता कराने का हुक्म इसलिए दिया गया है कि अगर समझौता कराते हुए न्याय को ध्यान में नहीं रखा जाएगा और किसी एक पक्ष के साथ नाइनसाफ़ी करके उसे समझौता करने पर विवश किया गया तो यह समझौता ज़्यादा देर तक क़ायम नहीं रहेगा। जिसके साथ नाइनसाफ़ी की गई होगी उसके दिल की तकलीफ़ और बेचैनी ताल्लुक़ात को फिर से ख़राब करने का ज़रिया बन जाएगी और यह भी मुमकिन है कि जो पक्ष इस नाइनसाफ़ी के समझौते की वजह से ज़्यादा फ़ायदे में रहा हो, वह अपनी जीत के घमण्ड में आकर दूसरे पक्ष को और ज़्यादा दबाने की कोशिश करे और हालात उससे भी ज़्यादा ख़राब हो जाएँ।

सारांश यह कि अल्लाह तआला ने साफ़ तौर पर यह फ़रमा दिया है कि–

"हमने रसूलों को साफ़ निशानियों और हिदायतों के साथ भेजा और उनके साथ किताब और तुला उतारी ताकि लोग इनसाफ़ पर क़ायम हों।"

(क़ुरआन, 57:25)

क़ुरआन मजीद और नबी (सल्ल॰) की हदीस इनसाफ़ की तालीमात (शिक्षाओं) से भरी पड़ी हैं, लेकिन विस्तार से पेश कर पाना मुश्किल है।

हाँ, दो ऐसे तबक़ों का यहाँ जिक्र कर देना फ़ायदेमन्द होगा जिनका न्याय और इनसाफ़ पर क़ायम रहना या न्याय और इनसाफ़ के रास्ते से हट जाना समाज के लिए बहुत ज़्यादा दूरगामी परिणाम पैदा करता है। इनमें से एक शासक वर्ग है और दूसरा अदालतों में बैठकर मुक़द्दमों के फ़ैसले करनेवाले जजों का वर्ग है।

शासक वर्ग का इनसाफ़

शासकों से मुराद यहाँ वे लोग हैं जो किसी समाज में सत्ता के मालिक होते हैं चाहे किसी देश का संचालक या सरबराह हो या उसके मंत्रियों का समुदाय या उसकी प्रबन्धक समिति के बड़े और छोटे अफ़सर, जैसे कि पिछले पृष्ठों में बयान किया जा चुका है अधिकारों के ज़्यादा या कम होने से नाइनसाफ़ी या इनसाफ़ करने के मौक़े भी ज़्यादा या कम होते हैं। इसलिए ज़ाहिर है कि इन शासकों में से जिन-जिन के अधिकार जितने-जितने ज़्यादा होंगे, वे उतने ही अधिक आज़माइश में घिरे होंगे कि अपने अधीन लोगों से नाइनसाफ़ी करके गुनहगार न हो जाएँ।

शासकों की जनता के साथ नाइनसाफ़ी करने की एक ख़ास शक्ल यह है कि शासक जनता की जान, माल और इज़्ज़त की हिफ़ाज़त का बन्दोबस्त करने में कोताही करें हालाँकि उन्हें सत्ता दी ही इसलिए जाती है कि क्षेत्र और क्षेत्र के रहनेवालों की हर तरह की भलाई का प्रबन्ध करें और उनकी जान-माल और इज़्ज़त की रक्षा का प्रबन्ध करना भी उन्हीं के कर्त्तव्यों में शामिल है। इसलिए जब शासक वर्ग सत्ता तो सँभाल लेते हैं और उससे लाभ उठाने में भी बहुत सतर्क साबित होते हैं मगर जनता को अपेक्षित सुरक्षा मुहैया नहीं कराते तो वे बहुत बड़ा अन्याय और नाइनसाफ़ी कर रहे होते हैं। क्योंकि जनता के साथ इनसाफ़ करने की एक शक्ल तो यह होती है कि जब कोई इनसान किसी ज़ुल्म और अत्याचार का निशाना बने तो उसकी फ़रियाद सुनी जाए, उसे उसका हक़ दिलाया जाए और ज़ालिम को सज़ा दी जाए। और दूसरी शक्ल यह होती है कि क्षेत्र का बन्दोबस्त इतना अच्छा रखा जाए कि किसी को किसी पर ज़ुल्म करने की हिम्मत ही न हो।

इनसाफ़ करने की दूसरी शक्ल पहली से ज़्यादा बेहतर है। इसलिए जो शासक या अधिकारी बन्दोबस्त में कोताही करते हैं, वह मानो लोगों को एक-दूसरे से नाइनसाफ़ी करने की खुली छूट देते हैं और ऐसा करके मानो वे आप ही जनता से नाइनसाफ़ी का सुलूक कर रहे होते हैं।

शासकों का कर्त्तव्य है कि अपने बन्दोबस्त की अच्छाई से जनता के दिलों में इतमीनान पैदा कर दें कि उनकी हर चीज़ सुरक्षित है और अपने व्यवहार से उन्हें यक़ीन दिला दें कि उनमें से ज़ो कोई भी किसी की तरफ़ ज़ुल्म और अत्याचार का हाथ बढ़ाएगा वह अपने किए की पूरी सज़ा पाएगा। इसका सबसे बड़ा फ़ायदा यह होगा कि लोग एक-दूसरे से नाइनसाफ़ी करने से डरेंगे और समाज सामूहिक रूप से नाइनसाफ़ी के ज़ख़्मों से बहुत हद तक सुरक्षित रहेगा। जहाँ लोगों को अच्छी तरह मालूम होगा कि क़ातिल ज़रूर क़त्ल होगा, ज़ालिम को उसके ज़ुल्म का बदला हर हाल में मिलेगा, किसी का अधिकार छीननेवाला उस अधिकार को वापस करने पर मजबूर होगा और साथ ही सज़ा भी पाएगा, किसी की परवरिश का ज़िम्मेदार अगर उसकी देख-भाल न करेगा तो अदालत के कटघरे में खड़ा किया जाएगा और दूसरों को बेइज़्ज़त करनेवाला ख़ुद ही रुस्वाई का शिकार होगा, वहाँ उपद्रवी किसी की जान-माल, इज़्ज़त और अधिकारों पर हाथ डालने से पहले बीस बार सोचेंगे। मगर जहाँ शासक या अधिकारी लापरवाह, कर्त्तव्यों का पालन न करनेवाले, अयोग्य, पद और-मरतबे के दीवाने और दूसरों के अधिकार छीननेवाले होंगे वहाँ फ़ितना फैलानेवालों को और ज़्यादा मौक़ा मिलेगा और जनता एक तरफ़ तो शासक के अत्याचारों का निशाना बनेगी और दूसरी तरफ़ उनकी कोताहियों की वजह से ख़ुद भी एक-दूसरे को नाइनसाफ़ी का निशाना बनाने पर दिलेर हो जाएगी।

शासकों की नाइनसाफ़ी की दूसरी शक्ल वह है जिसे 'कुंबा-परवरी' कहा जाता है। कुंम्बा-परवरी यह है कि शासक और अफ़सर लोग लोगों के अधिकारों को अदा करते और उनको फ़ायदा पहुँचाते वक़्त जनता के उस हिस्से की तरफ़ ख़ास ध्यान रखें जो उनके रिश्तेदारों से सम्बन्धित हो। और ऐसा करते वक़्त वे यह भी न देखें कि वे पुरस्कारों के योग्य भी हैं या

नहीं। बहुत-से अधिकारियों को अधिकार प्राप्त होता है कि लोगों को नौकरियाँ दें या उनके नाम मकान या ज़मीनें आवंटित (allotment) करें या उन्हे कई प्रकार की ट्रेनिंग के लिए वज़ीफ़े (scholarship) देकर विदेश भेजें या उन्हें और कोई ऐसा ही फ़ायदा पहुँचाएँ। वे यह न देखें कि कौन अपनी योग्यताओं और सेवाओं की दृष्टि से उसका पात्र है, बल्कि अपने रिश्तेदारों ही को देते चले जाएँ तो यह एक बहुत बड़ी नाइनसाफ़ी होती है, क्योंकि जब किसी ऐसे इनसान को फ़ायदा पहुँचाने की कोशिश की जाती है जो उसका हक़दार नहीं होता तो यह हक़ उस इनसान से छीना जाता है जो उसका हक़दार होता है। उदाहरण के लिए --

जब अपने किसी कम योग्यता रखनेवाले रिश्तेदार को कोई पद दे दिया जाता है तो उससे वह इनसान अवश्य प्रभावित होता है जो अपनी योग्यता के आधार पर उस पद का ज़्यादा हक़दार था। या जब अपने किसी अयोग्य बेटे, भाई या भतीजे को सरकारी ख़र्च पर विदेश भेजा जाता है तो इसका प्रभाव उस योग्य छात्र पर पड़ता है जो उस वज़ीफ़े (छात्रवृत्ति) का ज़्यादा हक़दार था।

जब कम नम्बर पानेवाले छात्र रिश्वत और सिफ़ारिश के बल पर उच्च शिक्षण संस्थाओं की सीटों पर क़ब्ज़ा कर लेते हैं तो अधिक नम्बर पानेवाले वे छात्र वंचित हो जाते हैं जिनके पास योग्यता तो थी, मगर दूसरे साधन नहीं थे।

जब कोई पहुँच रखनेवाला व्यक्ति अपनी पहुँच से काम लेकर अपने अयोग्य बच्चे को बोर्ड या यूनिवर्सिटी में पहला स्थान दिला देता है तो इससे यक़ीनन उस योग्य बच्चे का अधिकार छिन जाता है जिसको वास्तव में प्रथम स्थान पाने का सम्मान मिलना था।

इसी प्रकार किसी झूठे मुद्दई के पक्ष में सिर्फ़ इसलिए फ़ैसला दिया या करवा दिया जाता है कि वह अपना रिश्तेदार है तो इससे वह सच्चा मुद्दंआ अलैह (प्रतिवादी) ज़ुल्म और अत्याचार का निशाना बनकर रह जाता है।

कहने का मतलब यह है कि पद और अधिकार से काम लेकर अपने

कुल-परिवार को अनुचित लाभ पहुँचाने से जनता का वह हिस्सा जो उन लाभों का सबसे ज़्यादा हक़दार था निश्चित रूप से नाइनसाफ़ी का शिकार होता है। इसलिए जो हुक्मरान (शासक) या अफ़सर कल अल्लाह तआला के दरबार में एक आदिल (इनसाफ़ करने वाले) की हैसियत से हाज़िर होना चाहता हो और दुनिया की रुसवाई से भी बचना चाहता हो उसके लिए ज़रूरी है कि –

जनता की जान-माल और इज़्ज़त की हिफ़ाज़त का बन्दोबस्त करने के सिलसिले में जितनी ज़िम्मेदारी उसके कंधों पर है उसे पूरी लगन के साथ निभाए।

जनता के हक़ अदा करते वक़्त उनकी योग्यता और क़ाबिलियत को सामने रखे। सिर्फ़ अपनी रिश्तेदारी और दोस्ती के आधार पर फ़ायदे बाँटने न शुरू कर दे।

इसके अलावा शासक और अधिकारी के न्यायप्रिय होने की एक बड़ी माँग यह भी है कि वह जनता को आलोचना करने और फ़रियाद करने का अधिकार दें, ताकि शासक की तरफ़ से नाइनसाफ़ी हो तो जनता आवाज़ उठा सके। यह न हो कि उनका गला ऐसा घोंटा जाए कि वे बोल ही न सकें। जनता के पास आलोचना करने और फ़रियाद करने का अधिकार होने से स्वयं शासकों का भी फ़ायदा है, क्योंकि जब जनता को टोकने और बोलने का अधिकार प्रापत होगा तो शासक को भी मालूम होता रहेगा कि उन्होंने कब और कहाँ नाइनसाफ़ी की है। लेकिन अगर जनता की ज़बान बन्द होगी तो ज़ुल्म और ज़ोर-ज़बरदस्ती का बाज़ार गर्म रखते हुए भी शासक इसी ग़लतफ़हमी में रहेंगे कि हम तो बड़े इनसाफ़ करनेवाले (न्यायनिष्ठ) हैं। क्योंकि इनसानों को आम तौर पर अपनी ग़लतियाँ नज़र नहीं आया करतीं, वह तो दूसरों को नज़र आती हैं, ख़ासकर उनको जिनपर उनका असर पड़ता है। अब अगर जन-साधारण, जिनपर शासक का ज़ुल्म व ज़ोर-ज़बरदस्ती असर डाल रही होगी, बोल ही नहीं सकेंगे तो शासक को कौन बताएगा कि वह ज़ालिम और नाइनसाफ़ है। आश्चर्य नहीं कि उन्हें अपने इनसाफ़ और ज़ुल्म करने का पता उसी वक़्त चले, जब वे उस ज़ुल्म व नाइनसाफ़ी के लाए हुए फन्दे में कसे जा चुके होंगे, तो क्या फिर

यह उचित नहीं है कि वह बुरा वक़्त आने से पहले ही जनता उन्हें बता दे कि तुम नाइनसाफ़ी कर रहे हो और वे अपना सुधार करके बुरे अंजाम से बच जाएँ। क्योंकि अगर तौबा और सुधार को निजात (मुक्ति) का रास्ता न बनाया जाए तो ज़ुल्म और ज़ोर-ज़बरदस्ती तो बुरे अंजाम तक पहुचाँ कर ही रहती है और ये बुरे परिणाम प्रायः दुनिया और आख़िरत (परलोक) दोनों जगह सामने आ जाते हैं। अल्लाह से डरनेवाले जिन लोगों को अपनी ज़िम्मेदारियों का सही मानों में एहसास होता था, वे तो लोगों से माँग किया करते थे कि लोग उन्हें उनकी ग़लतियों और कोताहियों से सूचित करते रहें। हज़रत अबू बक्र (रज़ि॰) ने ख़लीफ़ा बनने के बाद जो पहला भाषण दिया उसमें कहा –

> "ऐ लोगो! मैं तुम्हारा शासक बनाया गया हूँ यद्यपि मैं तुमसे अच्छा नहीं हूँ। अगर मैं नेक काम करूँ तो मेरी मदद करना और अगर ग़लत काम करूँ तो मुझे टोक देना।"

इसी तरह हज़रत उमर (रजि॰) ने लोगों को आदेश दिया –

> "ऐ मुसलमानो! मेरे ऊपर तुम्हारे कई अधिकार हैं जिनके बारे में तुम्हें मुझसे पूछ-गछ करनी चाहिए।"

सीधे और सही रास्ते पर क़ायम रहने के लिए आप इतना फ़िक्रमन्द रहते कि एक दिन उपस्थित लोगों को सम्बोधित करके कहा –

> "लोगो! अगर मैं दुनिया की तरफ़ झुक जाऊँ तो तुम क्या करोगे?।"

इसपर एक आदमी उठकर खड़ा हो गया और तलवार म्यान से निकालकर बोला –

> "हम आपका सिर जिस्म से अलग कर देंगे।"

हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उसे आज़माने के लिए डाटँकर कहा– "क्या तू मेरी शान में ये शब्द कहता है?" उसने कहा – "हाँ-हाँ, आपकी शान में।"

इसपर हज़रत उमर (रज़ि॰) बोले – "अल्लाह का शुक्र है कि हमारी क़ौम में ऐसे लोग मौजूद हैं जो मुझे टेढ़ा होते देखेंगे तो सीधा कर देंगे।"

अदालतों में इनसाफ़

यद्यपि समाज में कोई जगह ऐसी नहीं जहाँ नाइनसाफ़ी हो और फिर वह नाइनसाफ़ी, ख़राबी और उत्पीड़न को जन्म न दे। फिर भी, अदालतें जहाँ लोग जाते ही हैं सिर्फ़ इनसाफ़ माँगने के लिए वहाँ अगर इनसाफ़ न होगा तो उनका वुजूद ही बेमानी और निरर्थक हो जाएगा । जो लोग इन अदालतों में लाए मुक़द्दमों का फ़ैसला करने के ज़िम्मेदार होते हैं, अरबी भाषा में उन्हें 'क़ाज़ी' कहा जाता है। यह शब्द 'क़ज़ाअ' से बना है जिसके मानी हैं 'फ़ैसला करना'। इसलिए चाहे कोई नायब तहसीलदार हो या तहसीलदार या मैजिस्ट्रेट या सिविल जज या सेशन जज या हाई कोर्ट का जज या सुप्रीम कोर्ट का जज, हर एक के लिए 'क़ाज़ी' शब्द इस्तेमाल हो सकता है।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

" जो व्यक्ति लोगों के बीच क़ाज़ी – यानी फ़ैसला करनेवाला – बनाया गया, वह बिना छुरी के ज़बह किया गया ।"

(हदीस : अबू दाऊद)

इस अर्थपूर्ण वाक्य में नबी (सल्ल॰) ने जिस हक़ीक़त को बयान किया है वह यह है कि जो व्यक्ति क़ाज़ी बनेगा उसपर यह ज़िम्मेदारी आ पड़ेगी कि बिना किसी की अनुचित रिआयत या तरफ़दारी किए यथासंभव ठीक-ठीक और न्यायपूर्ण फ़ैसला करे। न ग़लत क़िस्म की सिफ़ारिश से मुतास्सिर (प्रभावित) हो, न रिश्वत ले, न मुक़द्दमे पर ग़ौर व फ़िक्र करने में सुस्ती करे और न बिना सोचे-समझे अज्ञानतापूर्ण फ़ैसला करे। अब इनसान चूँकि उसी समाज का एक सदस्य होता है जिसमें रहनेवालों के मुक़द्दमों का वह फ़ैसला करता है, इसलिए इस बात का ख़तरा रहता है कि समाज में से किसी ओर से उसपर दबाव पड़े और उसे ग़लत फ़ैसला करने पर मजबूर किया जाए। फिर यह भी संभव है कि मुजरिम उसका कोई रिश्तेदार हो या

उस मुक़द्दमे का दोटूक फ़ैसला करने से ख़ुद जज के अपने निजी स्वार्थ पर प्रभाव पड़ता हो। अब जो ज़रा-सा भी हटेगा और इस तरह बेगुनाह के हक़्क़ों को हड़प लिए जाने का साधन बनेगा, वह अल्लाह के निकट मुजरिम होगा। इसी हक़ीक़त को नबी (सल्ल०) ने इन शब्दों में बयान किया है कि वह बिना छुरी के ज़िबह किया गया, यानी उसपर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी आ पड़ी और वह ऐसी आज़माइश का शिकार हो गया जिसपर पूरा उतरना बहुत मुश्किल है। इस बेहतर अन्दाज़ में बात करके मानो नबी (सल्ल०) ने जजों और क़ाज़ियों को तंबीह की है कि अपनी दुनिया में मिलनेवाले फ़ायदे और नुकसान से ऊपर उठकर और ख़ुदा का ख़ौफ़ दिल में रखते हुए न्याय और इनसाफ़ के साथ अपना काम पूरा करें।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के फ़रमानों में जज और काज़ी के लिए कुछ हिदायतें मिलती हैं जो निम्नलिखित हैं –

(1) फ़ैसला करने और सुनाने से पहले ज़रूरी है कि दोनों पक्षों की बातें एक समान ध्यान और ग़ौर से सुनी जाएँ और सिर्फ़ एक ही की बात सुनकर फ़ैसला न दे दिया जाए।

(2) फ़ैसला करते हुए पूरी नेक नीयती से सही फ़ैसला करने की कोशिश की जाए और जो मुक़द्दमा सामने हो उसपर अच्छी तरह ग़ौर किया जाए। यह नहीं कि पूरी तरह से ग़ौर किए बिना जल्दबाज़ी और लापरवाही से फ़ैसला कर दिया जाए।

(3) पूरी कोशिश की जाए कि सच्चाई को पहचाना जाए और उसके मुताबिक़ फ़ैसला किया जाए और इस बात का पूरा ध्यान रखा जाए कि फ़ैसला अत्याचारपूर्ण न हो। इसी तरह नादानी के फ़ैसले करने से भी परहेज़ किया जाए। फ़ैसला वही करे जो मामले को समझने की योग्यता रखता हो। नबी (सल्ल०) के जिन फ़रमानों से ये उसूल लिए गए हैं वे इस तरह हैं :

(1) हज़रत अली (रजि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०)

ने मुझे क़ाज़ी (जज) बनाकर यमन की तरफ़ भेजा। मैंने कहा, ऐ अल्लाह के रसूल आप मुझे भेज तो रहे हैं मगर मैं कम उम्र हूँ और मुझे क़ज़ा (यानी फ़ैसला करने का ज्ञान) भी नहीं आता। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अल्लाह तेरे दिल को हिदायत देगा और तेरी ज़बान को साबित रखेगा। लेकिन तुम इस बात का ध्यान रखना कि जब दो झगड़नेवाले फ़ैसला कराने के लिए तुम्हारे सामने बैठें तो सिर्फ़ एक की बात सुनकर कभी भी फ़ैसला न कर देना जब तक कि दूसरे की बात भी उसी तरह न सुन लो जिस तरह पहले की सुनी हो। अगर तुम ऐसा करोगे तो सही फ़ैसला करना तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छी तरह वाज़ेह (स्पष्ट) हो जाएगा। हज़रत अली बयान करते हैं कि जब नबी (सल्ल॰) ने मुझे यह तदबीर बताई तो फिर मैं फ़ैसले करता रहा या (उन्होंने यूँ) कहा कि उसके बाद मुझे कोई फ़ैसला करने में कभी कोई संदेह न हुआ। (हदीस : अबू दाऊद)

फ़ारसी में एक कहावत है कि —

"तनहा बक़ाज़ी बरू राज़ी बया"

यानी क़ाज़ी के पास अकेले जाओ और राज़ी होकर वापस आ जाओ, क्योंकि इस हाल में तो क़ाज़ी तेरे हक़ ही में फ़ैसला करेगा। यह वही बात है जो पिछले पृष्ठों में बयान हो चुकी है कि किसी मामले में इनसाफ़ का फ़ैसला उसी वक़्त हो सकता है जबकि मामले के सभी पहलू सामने हों और मामले के सभी पहलू तभी सामने आ सकते हैं जब दोनों पक्षों को अपनी-अपनी बात कहने का पूरा मौक़ा दिया जाए। वरना एक व्यक्ति तो आम तौर से मुक़द्दमे की उतनी ही बात पेश करता है जितनी उसके अपने हक़ में जाती हो। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने ताकीद फ़रमाई कि फ़ैसला करने से पहले दोनों पक्षों की बातों को समान रूप से ध्यान पूर्वक सुन लिया जाए।

(2) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया —

"जब फ़ैसला करनेवाला फ़ैसला करे और ख़ूब ग़ौर व फ़िक्र करके करे, फिर ठीक फ़ैसले पर पहुँचे तो उसके लिए दो

प्रतिफल हैं और जब वह फ़ैसला करे और ख़ूब सोच-समझकर करे, मगर ठीक फ़ैसले पर न पहुँच सके (यानी फ़ैसला ग़लत हो) तब भी उसको प्रतिफल मिलेगा।" (हदीस : अबू दाऊद)

इस हदीस में एक ख़ास बात जिसकी तरफ़ इशारा है, वह यह है कि फ़ैसला करनेवाला बहुत ही चिन्तन-मनन करके और सोच-समझकर फ़ैसला करे। इसके बाद फिर अगर उसका फ़ैसला सही हुआ तो उसके लिए दो प्रतिदान हैं। एक चिन्तन- मनन करने और सोचने-समझने पर क़ुव्वत ख़र्च करने का और एक इस बात का कि उसका फ़ैसला सही है। लेकिन अगर वह चिन्तन-मनन तो पूरा करे, मगर फिर भी फ़ैसला उससे ग़लत हो जाए तो भी उसे एक सवाब (प्रतिफल) ज़रूर मिलेगा, क्योंकि उसकी नीयत यही थी कि वह ठीक फ़ैसले पर पहुँचे और उसके लिए उसने ग़ौर व फ़िक्र और सोच-समझ से भी काम लिया था। इसलिए अगर फ़ैसला ग़लत हो गया तब भी उसे उसकी कोशिश और अच्छी नीयत का बदला मिलेगा।

(3) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया –

"क़ाज़ी तीन प्रकार के होते हैं। उनमें से एक जन्नत में जाएगा और दो जहन्नम (नरक) में । जहाँ तक जन्नत में जानेवाले का सम्बन्ध है, यह वह व्यक्ति है जिसने हक़ (सच्चाई) को पहचान कर उसके मुताबिक़ फ़ैसला किया। इसके विपरीत जिस व्यक्ति ने हक़ को पहचान तो लिया मगर फ़ैसला करते हुए ज़ुल्म और पक्षपात से काम लिया तो वह जहन्नम (नरक) में जाएगा, और इसी तरह—जिस व्यक्ति ने लोगों के बीच नासमझी से फ़ैसला किया वह भी जहन्नम में जाएगा।" (हदीस : अबू दाऊद)

नादानी से फ़ैसला करनेवाला इसलिए जहन्नम में जाएगा कि जब वह नादान था तो फ़ैसला करने की ज़िम्मेदारी क्यों क़बूल की।

इसी तरह नबी (सल्ल०) के कथनों से यह भी मालूम होता है कि फ़ैसला करते वक़्त इस्लामी समानता के दृष्टिकोण को सामने रखना बहुत ज़रूरी है।

इस्लाम में अमीर और ग़रीब, बड़े और छोटे, ऊँच और नीच में वह फ़र्क़ नहीं रखा गया है जो और दूसरी क़ौमों और तहज़ीबों (संस्कृतियों और सभ्यताओं) में पाया जाता है। सभी एक दर्जे (श्रेणी) के हैं और ग़रीब से ग़रीब आदमी भी अपनी योग्यता के आधार पर बड़े से बड़ा मक़ाम हासिल कर सकता है। किसी मस्जिद में जाकर जमाअत से नमाज़ पढ़नेवालों को जाकर देख लीजिए, इस्लामी समानता अपनी पूरी स्पष्टता के साथ नज़र आ जाएगी। नमाज़ की सफ़ों में बड़े से बड़े आदमी से लेकर छोटे से छोटे आदमी तक सब कंधे से कंधा मिलाकर खड़े होते हैं। हुक्म है कि जो पहले आ जाए वह सबसे आगे की सफ़ में नमाज़ पढ़ने का हक़दार है, चाहे वह कितना ही ग़रीब क्यों न हो, बाद में आनेवाले का हक़ नहीं है कि वह पहले आनेवाले को आगे की साफ़ (पंक्ति) से हटाकर खुद वहाँ जाकर खड़ा हो जाए। क़ानून की नज़र में भी सब अमीर-ग़रीब एक दर्जे पर होंगे और सल्तनत का हुक्मरान (शासक) भी अगर कोई ऐसा जुर्म करेगा जिसकी शरीअत ने कोई निश्चित सज़ा रखी हो तो उसे भी वह सज़ा सहनी होगी। अगर ईमान और अच्छा अमल मौजूद हो तो ग़रीब की ग़रीबी न सिर्फ़ यह कि उसके लिए किसी ज़िल्लत का कारण नहीं होगी बल्कि कुछ हदीसों में इसकी बहुत बड़ाई बयान की गई है। इसी तरह कुल और ख़ानदान के घमण्ड को भी सख़्त नापसन्दीदा समझा गया है। किसी के बाप-दादा बड़े लोग थे या छोटे, उसकी अपनी इज़्ज़त उसके अपने कर्मों पर निर्भर है, न कि बाप-दादा के बड़े या छोटे होने पर। इस्लाम में जातियों और बिरादरियों को भी अहमियत नहीं दी गई, बल्कि सारा महत्व इनसान के अपने सही अक़ीदे और नेक कर्मों को दिया गया है, चाहे उसका किसी ज़ात और किसी बिरादरी से सम्बन्ध हो। क़ुरआन में अल्लाह तआला ने फ़रमाया है—

> "लोगो! हमने तुमको एक मर्द और एक औरत से पैदा किया फिर तुम्हारी क़ौमें और बिरादरियाँ बना दीं ताकि तुम एक दूसरे को पहचानो। हक़ीकत में अल्लाह के नज़दीक तुममें सबसे ज़्यादा इज़्ज़तवाला वह है जो तुम्हारे अन्दर सबसे ज़्यादा परहेज़गार है। बेशक अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और बाख़बर है।"
>
> (क़ुरआन, 49:13)

हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि क़ुरैश के लोग एक मख़ज़ूमी औरत के बारे में फ़िक्रमन्द थे जिसने चोरी की थी और अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने उसको सज़ा देने का हुक्म दिया था। क़ुरैश के लोगों ने कहा कि कौन उसके बारे में अल्लाह के रसूल से बात करे। कुछ ने कहा कि उसामा बिन ज़ैद (रज़ि॰) से अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को मुहब्बत है। अगर कुछ कह सकते हैं तो वही कह सकते हैं। अतः उसामा (रज़ि॰) ने आप (सल्ल॰) से उसका ज़िक्र किया तो नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया –

"क्या तुम अल्लाह की हदों में से एक हद (सज़ा) के बारे में सिफ़ारिश करते हो?"

फिर आप (सल्ल॰) उठ खड़े हुए और ख़ुतबा दिया फिर फ़रमाया –

"तुमसे पहली उम्मतें इसलिए हलाक हो गईं कि उनमें जब कोई मर्तबे और इज़्ज़तवाला आदमी चोरी करता था तो उसको छोड़ देते थे और जब कोई कमज़ोर आदमी करता था तो उसको सज़ा देते थे। ख़ुदा की क़सम! अगर मुहम्मद की बेटी फ़ातिमा भी चोरी करती तो यक़ीन जानो कि मैं उसका भी हाथ काट देता।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

इनसाफ़ की माँग

किसी समाज में अगर सही मानी में इनसाफ़ क़ायम किया जाना हो तो इसके लिए कुछ बातों का ध्यान रखना ज़रूरी होगा–

पहली बात यह कि समाज के कमज़ोर लोगों का हक़ उनको बिना कोई परेशानी उठाए मिल जाए।

दूसरी बात यह कि इनसाफ़ ख़रीदना न पड़े।

तीसरी बात यह कि किसी एक के जुर्म की सज़ा किसी दूसरे को न मिले।

चौथी बात यह कि फ़ैसला करनेवाले के व्यक्तिगत या कुछ दूसरे लोगों के फ़ायदे इनसाफ़ की राह में रुकावट बनने न पाएँ। और

पाँचवीं यह कि फ़रियाद सुनने में बेवजह देर न लगाई जाए।

कमज़ोर को बिना परेशान हुए उसका हक़ मिलना

जिस क़ौम में न्याय और इनसाफ़ की व्यवस्था ऐसी हो कि क़ौम के कमज़ोर लोग बिना मेहनत किए और बिना परेशान हुए अपना हक़ ले सकें तो यह उस क़ौम की एक बहुत बड़ी ख़ूबी है। धनवान, सत्ताधारी और उच्च पदाधिकारियों तक पहुँच रखनेवाले लोग तो ताक़त के बल पर अपने हक़ ले ही लेते हैं, इसलिए उन लोगों को उनका हक़ मिल जाना उस समाज की कोई बहुत बड़ी ख़ूबी नहीं है, बल्कि उसकी ख़ूबी यह है कि जिनके पास ताक़त नहीं है वे आराम से इनसाफ़ और न्याय प्राप्त कर सकें। इसके अलावा यह भी है कि यदि उन कमज़ोर लोगों को इनसाफ़ मिल तो जाता है, मगर बहुत ज़्यादा भाग-दौड़ करने और बड़ी परेशानी उठाने के बाद मिलता है तो इस स्थिति में भी उस क़ौम को प्रशंसनीय नहीं माना जाएगा।

प्रशंसनीय वह इस हाल में होगी कि उसके कमज़ोर लोगों को उनके अधिकार, बिना किसी बड़ी परेशानी का सामना किए, सहज ही मिलते रहें।

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक बद्दू (देहाती) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास क़र्ज़ का तक़ाज़ा करता हुआ आया जो उसका नबी (सल्ल॰) पर था। वह नबी (सल्ल॰) के साथ सख़्ती से बोला, यहाँ तक कि आप (सल्ल॰) से कहने लगा कि मैं आप को तंग करूँगा, वरना मेरा क़र्ज़ अदा कर दें। नबी (सल्ल॰) के साथ उसकी यह उद्दण्डता देखकर नबी (सल्ल॰) के साथी (सहाबा रज़ि॰) क्रोध से भड़क उठे और कहा, "तेरी तबाही हो, क्या तू जानता है कि किस से बात कर रहा है?" वह कहने लगा कि मैं तो अपना हक़ माँगता हूँ। इसपर नबी (सल्ल॰) ने (अपने साथियों से) कहा कि तुम हक़वाले का साथ क्यों नहीं देते। फिर आपने ख़ौला बिन्ते क़ैस (रज़ि॰) के पास किसी को भेजा और कहला भेजा कि अगर तुम्हारे पास खजूरें हों तो हमें क़र्ज़ दे दो। जब हमारी खजूरें आ जाएँगी तो हम तुम्हारा क़र्ज़ अदा कर देंगे। उन्होंने कहा, "मेरे बाप आपपर क़ुरबान हों, ऐ अल्लाह के रसूल! (मेरे पास खजूरें हैं)" अतः उन्होंने नबी (सल्ल॰) को वे खजूरें बतौर क़र्ज़ दे दीं। इस तरह अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने उस बद्दू का क़र्ज़ अदा कर दिया और उसे खाना भी खिलाया। इसपर वह बद्दू कहने लगा कि आपने मेरा हक़ पूरा दिया, अल्लाह आप को भी पूरा दे। इसपर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि वे सबसे अच्छे लोग हैं (जो दूसरों का हक़ पूरा-पूरा देते हैं और फ़रमाया कि) वह क़ौम कभी पाक न होगी (या कभी पाक न की जाएगी) जिसमें निर्बल और कमज़ोर लोग परेशान हुए बिना अपना हक़ न ले सकें। (हदीसः इब्ने माजा)

हज़रत जाबिर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि जब समुद्र के मुहाजिर (यानी वे मुहाजिर जो हिजरत करके हबशा की तरफ़ गए थे) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास वापस आए तो नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि क्या तुम मुझसे वे अजीब बातें नहीं बयान करोगे जो तुमने हबशा में देखीं। उनमें से कुछ नौजवानों ने कहा कि क्यों नहीं, ऐ अल्लाह के रसूल! (हम वे बातें आपसे बयान करते हैं, एक दिन की बात है कि) हम बैठे हुए थे कि हबशा के दरवेशों की बूढ़ी औरतों में से एक औरत हमारे पास से गुज़री। उसके

सिर पर मटका था। वह हबशावालों में से एक जवान के पास से गुज़री तो उस (जवान) ने अपना एक हाथ उसके दोनों कन्धों के बीच रखा और उसे धक्का दिया तो वह अपने घुटनों के बल गिर पड़ी और उसका मटका टूट गया। फिर जब वह उठी तो उस जवान की तरफ़ मुहँ करके कहने लगी कि ओ दग़ाबाज़! जल्द ही तुझे मालूम हो जाएगा (कि तुझे इस ज़ुल्म की क्या सज़ा मिलती है)। जब अल्लाह तआला (इनसाफ़ की) कुर्सी पर बैठेगा और अगले और पिछले सब लोगों को जमा करेगा और हाथों और पैरों ने जो कुछ किया होगा वे उसे बयान करेंगे, फिर तू जान लेगा कि अल्लाह के दरबार में मेरा और तेरा क्या फ़ैसला होता है। (यह बात सुनकर) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि उस (औरत) ने सच कहा। उसने सच कहा, कैसे पाक करेगा अल्लाह उस क़ौम को जिसके ताक़तवर से उसके कमज़ोर के लिए इनसाफ़ न लिया जाए। (हदीस : इब्ने माजा)

न्याय निःशुल्क हो

समाज में इनसाफ़ आम करने के लिए एक ज़रूरी बात यह भी है कि ज़रूरतमन्दों को इनसाफ़ ख़रीदना न पड़े कि जो ग़रीब उसकी क़ीमत न दे सकता हो वह इनसाफ़ पा ही न सके। अकसर ऐसा होता है कि किसी पर कोई ज़ुल्म या अत्याचार हुआ या किसी ने किसी के माल पर क़ब्ज़ा कर लिया, या उसकी जान ख़तरे में पड़ गई, या उसकी इज़्ज़त पर हमला किया गया, या उसके साथ कोई और नाइनसाफ़ी हुई और उसने उसके लिए अदालत का दरवाज़ा खटखटाया मगर वहाँ से इनसाफ़ पाने के लिए उसे इतना माल ख़र्च करना पड़ा कि उसकी पहली मुसीबत पर एक और मुसीबत, यानी क़र्ज़ की मुसीबत की बढ़ोत्तरी हो गई।

वास्तविकता यह है कि वह इनसाफ़, इनसाफ़ कहलाए जाने का हक़दार ही नहीं जो इतना मँहगा हो कि उसे पाने के लिए ग़रीबों को अपना हक़ छोड़ देना ज़्यादा आसान लगे। हद यह है कि कभी ऐसी हास्यास्पद स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है कि किसी आदमी ने अपना कोई हड़पा गया माल हासिल करने के लिए मुक़द्दमा चलाया, मगर मुक़द्दमे पर इतना ज़्यादा

ख़र्च आया कि उसके मुक़ाबले में उस माल की क़ीमत कम थी जिसे हासिल करने के लिए उसने अदालत का दरवाज़ा खटखटाया था।

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया है –

"वह क़ौम कभी पाक न होगी (या कभी पाक न की जाएगी) जिसमें ग़रीब और कमज़ोर लोग परेशान हुए बिना अपना हक़ न ले सकें।"

सोचा जाए तो मालूम होता है कि जिन ग़रीब और कमज़ोर लोगों के पास इतना पैसा नहीं होता कि न्याय पाने के लिए अदालत का ख़र्च आराम से उठा सकें, उन्हें यदि परिणामतः उनका हक़ मिलता भी है तो परेशान होने के बाद ही मिलता है। इसलिए लोगों के बीच न्याय स्थापित करने के लिए यह ज़रूरी है कि अदालतों की व्यवस्था ऐसी हो कि लोगों को इनसाफ़ पाने के लिए माल न ख़र्च करना पड़े, क्योंकि इस हालत में इनसाफ़ आम नहीं होगा, बल्कि उन लोगों तक ही सीमित रहेगा जो माल ख़र्च कर सकते हैं।

मुजरिम को ही सज़ा

क़ुरआन में है –

"प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ कमाता है उसका फल वही भोगेगा; कोई बोझ उठानेवाला किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा।"

(क़ुरआन, 6:164)

यानी जो शख़्स कोई जुर्म करेगा उसी को उसकी सज़ा भुगतनी होगी। उसके जुर्म की सज़ा उसके किसी अपने या उसके कुल या ख़ानदान के किसी और आदमी को नहीं दी जाएगी। इस्लाम से पहले अरबवासियों में जो बुरी प्रथाएँ थीं, उनमें एक यह भी थी कि जब एक क़बीले का कोई आदमी किसी दूसरे क़बीले के किसी आदमी को क़त्ल कर देता तो उसके बदले क़ातिल ही को क़त्ल करना ज़रूरी नहीं समझा जाता था, बल्कि अगर क़ातिल हाथ न आता तो उसके किसी रिश्तेदार या उसके क़बीले के किसी

आदमी को क़त्ल कर दिया जाता। इस तरह अगर मक़तूल (क़त्ल किया गया व्यक्ति) कोई बड़ा आदमी होता और क़ातिल कोई मामूली हैसियतवाला तो सिर्फ़ क़ातिल को क़त्ल करना काफ़ी न समझा जाता था बल्कि उसके साथ उसके कुछ रिश्तेदारों या क़बीले के लोगों को भी क़त्ल किया जाता था। मिसाल के तौर पर एक बार एक क़बीले के किसी आदमी ने दूसरे क़बीले के किसी बड़े आदमी को क़त्ल कर दिया। फिर क़ातिले के क़बीलेवाले परेशान हुए और उन्होंने समझौता करने के लिए किसी को भेजा। मक़तूल के क़बीले के किसी आदमी ने उस दूत को क़त्ल कर दिया और साथ ही यह भी कहा कि अभी तो सिर्फ़ हमारे मक़तूल के जूते के तस्मे का बदला अदा हुआ है यानी एक बेगुनाह की जान लेने के बाद अभी वे यह समझते थे कि सिर्फ़ उसके जूते के तस्मे का बदला अदा हुआ है यानी अभी और कई आदमी क़त्ल होंगे तब जाकर उस मक़तूल का क़िसास (ख़ून का बदला) पूरा होगा। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने अरबों की दूसरी बुराइयों के अलावा इस बुराई का भी सुधार किया और साफ़ तौर पर फ़रमा दिया कि मुजरिम के जुर्म की सज़ा मुजरिम के अलावा किसी और को नहीं दी जाएगी और मक़तूल कोई बड़ा आदमी हो या छोटा, उसकी जान के बदले सिर्फ़ क़ातिल ही की जान ली जाएगी, चाहे वह कैसा ही छोटा आदमी क्यों न हो।

तारिक़ मुहारबी बयान करते हैं कि एक आदमी ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! यह (क़बीला) बनू सालिबा (के लोग) हैं जिन्होंने जाहिलियत के दौर में फ़लाँ आदमी का क़त्ल किया था। आप (सल्ल॰) उनसे हमारा बदला दिलवाइए। इसपर नबी (सल्ल॰) ने अपने दोनों हाथों को (इतना) ऊँचा उठाया कि मैंने आप (सल्ल॰) की बग़लों की सफ़ेदी देख ली और फ़रमाया कि माँ के गुनाह का बदला बेटे से नहीं लिया जाएगा। आप (सल्ल॰) ने यह बात दो बार कही। (हदीस : नसई)

अबू रिमसा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैं अपने बाप के साथ अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास गया। फिर अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने मेरे बाप से कहा कि क्या यह तेरा बेटा है। मेरे बाप ने कहा कि जी हाँ। क़सम है काबा के रब की (कि यह मेरा बेटा है)। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि सच

(कह रहे हो)? मेरे बाप ने कहा कि मैं इसकी गवाही देता हूँ। फिर अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) मुस्कराए, क्योंकि मैं स्पष्ट रूप से अपने बाप के हमशक्ल था और फिर मेरे बाप ने मेरे बारे में क़सम भी खाई थी। फिर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि सचेत रहो कि तुम्हारी ग़लतियों की पकड़ इससे न होगी और इसकी ग़लतियों की पकड़ तुमसे न होगी, और अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने सूरा 6 (अनआम) की आयत 164 पढ़ी : "प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ कमाता है, उसका फल वही भोगेगा; कोई बोझ उठानेवाला किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा।" (हदीस : अबू दाऊद)

अपने या दूसरों के व्यक्तिगत फ़ायदे से ऊपर उठकर इनसाफ़ करना

क़ुरआन में है –

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! न्याय के ध्वजावाहक और अल्लाह के लिए गवाह बनो, चाहे तुम्हारे इनसाफ़ और तुम्हारी गवाही की चोट खुद तुमपर या तुम्हारे माँ-बाप और रिश्तेदारों पर ही क्यों न पड़ती हो। जिसके ख़िलाफ़ तुम्हें गवाही देनी हो चाहे वह मालदार हो या ग़रीब, अल्लाह तुमसे ज़्यादा उनका ख़ैरख़ाह (शुभचिंतक) है। इसलिए तुम अपने मन की इच्छा की पैरवी में न्याय से न हटो, और अगर तुमने लगी-लिपटी बात की या सच्चाई से दामन बचाया तो जान लो कि जो कुछ तुम करते हो अल्लाह को उसकी ख़बर है।" (क़ुरआन, 4:135)

इस आयत की व्याख्या करते हुए सैयद सुलैमान नदवी (रह॰) फ़रमाते हैं–

"इन आयतों में न्याय के विरुद्ध एक-एक रेशे को जड़ से निकालकर फेंक दिया गया है। कहा गया है कि मामलों में न्याय की तरफ़दारी तुम्हारा मक़सद हो, जो कुछ कहो या करो सच्ची बात कहो और ख़ुदा वास्ते कहो। इनसाफ़ के फ़ैसले और गवाही में न तो अपने नफ़्स (मन) का ख़याल बीच में आए, न अपनों और रिश्तेदारों का, न दौलतमन्द के पक्षपात का, न ग़रीब पर

तरस खाने का। फिर फ़ैसले और गवाही में कोई बात लगी-लिपटी न रखी जाए, न हक़ का कोई पहलू जान-बूझकर बचा लिया जाए। मतलब यह हुआ कि फैसले और गवाही में दौलतमन्द का लिहाज़ व मुरव्वत न करो, न ग़रीब पर तरस खाओ और रिश्तेदारी को भी न देखो, जो हक़ (सत्य) हो वह कर दिया करो। फिर सच कहने में कोई तोड़-मरोड़ न करो कि सुननेवाला संदेह में पड़ जाए या पूरी बात न कहकर उसमें से कुछ छिपा लो, तो ये सब बातें न्याय के विरुद्ध हैं। किसी ग़रीब की ग़रीबी पर तरस खाकर फ़ैसले में रद्दो-बदल कर देना ज़ाहिर में नेकी का काम दिखाई देता है, मगर हक़ीक़त में यह एक बहुत बड़ा धोखा है। फ़ैसले में तरस खाकर बेईमानी करना भी वैसा ही है जैसा किसी की ख़ातिर या किसी की बुज़ुर्गी को मानकर या किसी की बड़ाई से प्रभावित होकर बेईमानी करना। कहने का मतलब यह है कि इनसाफ़ के रास्ते में कोई अच्छी या बुरी भावना न्याय करनेवाले के लिए न्याय के मार्ग में कोई अवरोधक न बने। इसी तरह इस आयत का संकेत इधर भी हुआ कि जो गवाह किसी पक्ष को फ़ायदा पहुँचाने के लिए पक्षपातपूर्ण गवाही देता है, वह ग़लती में पड़ा हुआ है। अल्लाह तआला से बढ़कर कोई उसका सरपरस्त और निगराँ नहीं हो सकता। इसलिए न गवाहों को इसके लिए पक्षपात करना चाहिए और न ख़ुद किसी पक्ष को गवाह की पक्षपातपूर्ण गवाही द्वारा अपने फ़ायदे का विचार दिल में लाना चाहिए, बल्कि दोनों को अपना मामला अल्लाह के हवाले कर देना चाहिए कि वही उनका सबसे अच्छा और सबसे बढ़कर सरपरस्त व संरक्षक है।"

(सीरतुन-नबी, उर्दू भाग-6, पृ॰-460-461)

क़ुरआन की सूरा 4 (अन-निसा) आयत 105-112 में कुछ बातें बयान हुई हैं जिनमें एक घटना की ओर संकेत है जो नबी (सल्ल॰) के ज़माने में पेश आई। घटना यह थी कि अनसार के क़बीला बनी ज़फ़र में एक आदमी

जिसका नाम तामह या बशीर बिन उबैरिक़ था। उसने एक अनसारी की ज़िरह (कवच) चुरा ली और जब उसकी तहक़ीक़ शुरू हुई तो उसने उसे एक यहूदी के यहाँ रख दिया। ज़िरह के मालिक ने नबी (सल्ल०) से फ़रियाद की और तामह पर शक ज़ाहिर किया, मगर तामह और उसके भाई-बन्दों और उसके क़बीला बनी ज़फ़र के बहुत-से लोगों ने आपस में इत्तिफ़ाक़ करके उस यहूदी पर इलज़ाम थोप दिया। यहूदी से पूछा गया तो उसने अपनी सफ़ाई पेश की, मगर ये लोग तामह की हिमायत में ज़ोर-शोर से वकालत करते रहे। अल्लाह के नबी (सल्ल०) इस मुक़द्दमे की ज़ाहिरी बातें सुनकर और उनसे मुतास्सिर (प्रभावित) होकर उस यहूदी के ख़िलाफ़ फ़ैसला करने ही वाले थे कि अल्लाह की तरफ़ से वह्य आ गई और मुकद्दमे की सारी हक़ीक़त खोलकर बयान कर दी गई। कहा गया –

> "जो लोग अपने नफ़्स से विश्वासघात करते हैं तुम उनकी हिमायत न करो, अल्लाह तआला को ऐसा आदमी पसन्द नहीं जो विश्वासघाती और अपराध करनेवाला हो। ये लोग इनसानों से तो अपनी हरकतें छिपा सकते हैं, मगर अल्लाह से नहीं छिपा सकते। वह तो उस वक़्त भी उनके साथ होता है जब ये रातों को छिपकर उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ मशविरे करते हैं। उनके सारे कर्मों पर अल्लाह मुहीत (व्याप्त) है। हाँ, तुम लोगों ने उन अपराधियों की तरफ़ से दुनिया की ज़िन्दगी में तो झगड़ा कर लिया, मगर क़ियामत के दिन उनकी तरफ़ से कौन झगड़ा करेगा? आख़िर वहाँ कौन उनका वकील होगा?"
>
> (क़ुरआन, 4:107-109)

आगे चलकर इसी सूरा की आयत 112 में फ़रमाया गया –

"फिर जिसने कोई ग़लती या गुनाह करके उसका इलज़ाम किसी बेगुनाह पर थोप दिया, उसने तो बड़े लांछन और खुले गुनाह का बोझ समेट लिया।" (क़ुरआन, 4:112)

इन आयतों में उन मुसलमानों की सख़्ती से भर्त्सना की गई है जिन्होंने

सिर्फ़ ख़ानदान और क़बीले की तरफ़दारी में मुजरिम की हिमायत की थी। दूसरी तरफ़ आम मुसलमानों को यह सबक़ भी दिया गया कि इनसाफ़ के मामले में किसी पक्षपात का दख़ल नहीं होना चाहिए। यह कदापि ईमानदारी नहीं कि अपने गिरोह का आदमी अगर अपराध कर रहा हो तो भी उसकी हिमायत की जाए और दूसरे गिरोह का अगर बेगुनाह हो तो भी उसपर इलज़ाम लगा दिया जाए।

क़ुरआन में इसी सम्बन्ध में एक जगह और फ़रमाया गया –

"और जब बात कहो, इनसाफ़ की कहो चाहे मामला अपने रिश्तेदार ही का क्यों न हो।" (क़ुरआन, 6:152)

इनसाफ़ में देर न लगाना

अंत में यह भी समझ लेना चाहिए कि इनसाफ़ (न्याय) करने में हद से ज़्यादा देर लगाना भी नाइनसाफ़ी ही का एक रूप है। हाँलाकि फ़ैसला करनेवाले का कर्त्तव्य है कि सुनवाई किए जा रहे मुक़द्दमे के तमाम पहलुओं पर पूरी तरह ग़ौर व तहक़ीक़ (जाँच-पड़ताल) करके फ़ैसला करे और जल्दबाज़ी से काम न ले। फिर भी हर काम की एक सीमा होती है और अगर इनसान उस सीमा से आगे बढ़ जाए तो फिर ज़्यादती हो जाती है। कई अदालतों में फ़ैसला करने में इतनी ज़्यादा देर लगाई जाती है कि सम्बन्धित लोग सख़्त परेशान हो जाते हैं। ख़ासकर दीवानी मुक़द्दमों का तो यह हाल होता है कि कई वर्षों तक चलते चले जाते हैं और आख़िरी फ़ैसला होने की स्थिति ही नहीं आती। अदालतें तारीख़ों पर तारीख़ें दिए चली जाती हैं और लोगों को थका मारती हैं।

मुक़द्दमों के इस तरह हद से ज़्यादा लम्बे हो जाने से सम्बन्धित लोगों को एक तरफ़ तो परेशानी का सामना करना पड़ता है और दूसरी तरफ़ कभी-कभी उनहें भारी नुक़सान भी उठाना पड़ता है। मिसाल के तौर पर एक आदमी के पास ज़मीन का टुकड़ा है जिसपर उसे अपना घर बनाना है। उस ज़मीन पर किसी ने नाजाइज़ तौर पर क़ब्ज़ा कर लिया है और इस

मुक़द्दमे को अदालत में ले जाना पड़ा है। अब मुक़द्दमा एक अदालत से दूसरी अदालत और दूसरी से तीसरी में जा रहा है। हर अदालत उस मुक़द्दमे को लटका रही है। आख़िर आठ-नौ साल के बाद जब मालिक के हक़ में फ़ैसला हुआ तो लकड़ी, लोहा सीमेन्ट आदि निर्माण से ताल्लुक़ रखनेवाली चीज़ों की क़ीमतें इतनी अधिक हो चुकी होती हैं कि ग़रीब मालिक अब मकान बनाने की कल्पना भी नहीं कर सकता।

हालाँकि जब मुक़द्दमा पेश हुआ था, अगर मुनासिब वक़्त के अन्दर-अन्दर फ़ैसला हो जाता तो वह किसी न किसी तरह घर बना ही लेता।

ऐसे ही एक शादीशुदा लड़की शौहर की बदसुलूकी से परेशान है। माँ-बाप वहाँ से तलाक़ दिलवाकर किसी अच्छी जगह शादी करवाना चाहते हैं। बद-क़िस्मती से आपस में फ़ैसला नहीं हो सका और मुक़द्दमा अदालत में चला गया। अब वह कई सालों तक वहीं फँसा रहा, यहाँ तक की लड़की की उम्र इतनी ज़्यादा हो गई कि अच्छे रिश्ते मिलने के मौक़े ही कम हो गए।

एक नौजवान बेवा (विधवा) छोटे-छोटे बच्चों के साथ तनहा रह रही है। बच्चों की जायदाद पर किसी रिश्तेदार ने क़ब्ज़ा कर लिया है। बेवा का कोई और आमदनी का ज़रिया भी नहीं और जायदाद का मुक़द्दमा अदालत में चल रहा है। अदालतों में तारीख़ पर तारीख़ पड़ रही है, न फ़ैसला होता है, न बेवा और यतीम बच्चों का माल उनके क़ब्ज़े में आता है। अब इस बीच वह बेवा अपने बच्चों को कहाँ से खिलाए, कहाँ से पहनाए और कहाँ से उनकी ज़रूरतें पूरी करे?

फिर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि रिहाइश एक शहर में होती है और मुक़द्दमा किसी दूसरे शहर में चल रहा होता है। अब सालों तक जो अदालतें तारीख़ें देती रहती हैं उनके लिए सफ़र करके सम्बन्धित लोगों का कचूमर निकल जाता है। ऐसी मिसालें भी मौजूद हैं कि मुक़द्दमा चलानेवाले अल्लाह को प्यारे हो गए मगर मुक़द्दमा है कि ख़त्म होने में नहीं आ रहा,

बस चले ही जा रहा है।

यह स्थिति यक़ीनन सम्बन्धित लोगों के लिए बहुत परेशान करने वाली होती है, और जो लोग इनसाफ़ करने के ज़िम्मेदार हैं उन्हें मालूम होना चाहिए कि लोगों को उनका जो हक़ उन्होंने इतना परेशान करने के बाद दिया है, उसके देने पर वे कुछ ज़्यादा तारीफ़ और प्रशंसा के हक़दार नहीं हैं। एक कहावत है कि –

"जो इनसाफ़ बहुत देर करके दिया जाता है वह मानो दिया ही नहीं जाता।"